VAAGDHARA

वार्तें वाग्धारा नी

अक्टूबर 2026

अंक 77

VAAGDHARA

संपादकीय

प्यारे किसान भाइयों – बहनों, स्वराजी भाइयों, संगठन के पदाधिकारीयों, व प्यारे बच्चों।

जय स्वराज!

त्यौहारों के इस महीने में आपको त्यौहारों के लिए बहुत सारी शुभकामनाएं। हमारी दीपावली के लिए शुभकामनाएं और पुनः रबी की फसल की बुवाई शुरू होने के लिए शुभकामनाएं। इसी के साथ हमारे लोकतंत्र के पंचायत पर्व, पंचायत चुनाव पर हमारी सक्रिय भागीदारी के लिए बहुत–बहुत शुभकामनाएं।

साथियों, चूंकि पत्रिका के माध्यम से मैं आपसे रुबरु होता हूँ, और त्यौहारों के साथ हमारे लिए यह माह बहुत महत्वपूर्ण होता है। हम हमारी अगली फसल की बुवाई, खेतों की तैयारी और आर्थिक प्रबंधन भी देखते हैं। इसी के साथ हमारे स्थानीय दिवाली की कहावतें आज दिवाली काल दिवाली पमने दाड़े मेरियो को भी हम चरितार्थ करने के लिए प्रयास करते हैं।

परंतु हमें यह जरूर देखना होगा कि चूंकि बरसात की फसल निकलने पर हमें किस प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़े और हम रबी के लिए किस प्रकार से तैयारी कर सकते हैं, जिससे हम हमारे साल भर के भोजन की सुरक्षा कर पाएं। इसी के साथ हमें यह महसूस भी हुआ कि अगर हमने हमारे प्राकृतिक संसाधनों को सहज संभाला और निरंतर देखभाल की, तो इस बरसात की मौसम में हमने हमारी समस्याओं पर विजय कुछ हद तक पाई। क्या हम इसी प्रकार से हमारी रबी की सुरक्षा कर सकते हैं, हमारी पीढ़ियों की सुरक्षा कर सकते हैं?

यह हमारे लिए महत्वपूर्ण है, चूंकि हमारे बच्चों के लिए, हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए त्यौहार का समय बहुत महत्वपूर्ण होता है। अगर हम उन्हें हमारे पूर्वजों द्वारा किस प्रकार से त्यौहार मनाए जाते थे, उसकी जानकारी दे पाएं, तो हम परंपरा को आगे बढ़ाने में हमारा योगदान दे सकेंगे और हम जानकारी को साझा भी कर पाएंगे।

हमारी जिम्मेदारी यह है कि हम गांव, परिवार, समाज में इस संवाद, संस्कृति के इस संवाद को बढ़ाने के लिए प्रयास करें। चूंकि पंचायत चुनाव के बारे में विशेष रूप से मैं यही आग्रह करूंगा पत्रिका के माध्यम से कि हमें सक्रिय रूप से हमारे मत की भागीदारी पूर्ण रूप से निभानी चाहिए और मताधिकार का प्रयोग कर पंचायत को सशक्त बनाने के लिए प्रयास करना चाहिए, जिससे कि हमारे गांव का पंचायत का विकास हम सुनिश्चित कर पाएंगे।

चूंकि हमारे क्षेत्र में दीपावली से भी हम एक नव वर्ष की परंपरा को मानते हैं और इसे हम 5 दिन का दीपोत्सव या इस त्यौहार को अलग–अलग दिन के हिसाब से मनाते हैं, उन समस्त दिनों की बहुत–बहुत सारी शुभकामनाएं।

जय स्वराज।

आपका अपना

जयेश जोशी

दक्षिणी राजस्थान एवं सीमावर्ती गुजरात–मध्य प्रदेश के आदिवासी किसानों के लिए खरीफ फसलों की कटाई और भण्डारण की टिकाऊ पद्धतियाँ

उदयपुर, बाँसवाड़ा, डूँगरपुर, प्रतापगढ़ (राजस्थान) के साथ–साथ उनसे सटे दाहोद (गुजरात) तथा झाबुआ और रतलाम (मध्य प्रदेश) का पहाड़ी अंचल भौगोलिक और सांस्कृतिक रूप से एक ही पट्टी है। यहाँ भील, भिलाला, मीणा, गरासिया और डामोर जैसे समुदायों के किसान मुख्यतः बारिश के भरोसे खेती करते हैं। तीनों राज्यों की सीमाओं पर फैले इस क्षेत्र की बोली, रीति–रिवाज और खेती के तौर–तरीके काफी मिलते–जुलते हैं। इस अंचल की प्रमुख खरीफ फसल मक्का है। इसके साथ धान, उड़द, अरहर, मूंगफली और कुछ क्षेत्रों में कपास तथा कोदो–कुटकी जैसे लघु अनाज उगाए जाते हैं।

इस पट्टी की चुनौतियाँ भी साझा हैं : ढालू और पथरीली जमीन, छोटी बिखरी जोतें, दूर–दूर बसे फलिये (घरों के समूह), सितंबर–अक्टूबर की देर की बारिश, मजदूरी के लिए गुजरात और अन्य शहरों की ओर मौसमी पलायन और बाजार तक पहुँच की कमी। ऐसे में कटाई और भण्डारण की ऐसी पद्धतियाँ चाहिए जो कम लागत की हों, स्थानीय संसाधनों पर टिकी हों और पीढ़ियों के अनुभव से जुड़ी हों।

1. सही समय पर कटाई : बारिश से बचाव

मक्का : जब भुट्टे का ऊपरी छिलका सूखकर भूरा हो जाए और दाने सख्त व चमकदार हों, तब तुड़ाई करें। दाने के आधार पर काली परत बनना परिपक्वता का संकेत है। बहुत देर करने पर भुट्टे खेत में ही फफूँद और तोते–चूहों का शिकार हो जाते हैं।

धान : लगभग 80–85 प्रतिशत बालियाँ सुनहरी होने पर कटाई करें। ढालू खेतों में ऊपरी खेत पहले पकते हैं, इसलिए खेत–दर–खेत क्रम से कटाई करें।

उड़द, अरहर : अधिकांश फलियाँ पीली–भूरी होने पर कटाई करें।

मूंगफली : पत्तियाँ पीली पड़ने पर खुदाई करें। गीली मिट्टी में खुदाई न करें, वरना फलियाँ मिट्टी में रह जाती हैं।

कपास : ओस उतरने के बाद चुनाई करें और साफ कपड़े का उपयोग करें।

स्थानीय सुझाव : फसल पकने के समय गाँव की पंचायत, आँगनवाड़ी या कृषि मित्र के माध्यम से मौसम की चेतावनी लें। जिस दिन बारिश की आशंका हो, उस दिन कटी फसल को खुले खेत में न छोड़ें। उसे ढँककर या छत के नीचे रखें।

2. सामूहिक श्रम की परंपरा का लाभ

भील समुदाय में हलमा जैसी सामूहिक श्रम की परंपरा रही है, जो झाबुआ अंचल में विशेष रूप से जानी जाती है। कटाई के मौसम में इसे फिर से अपनाया जा सकता है। पड़ोसी परिवार बारी–बारी से एक–दूसरे के खेत में कटाई, तुड़ाई और ढुलाई करें, तो कम समय में पूरी फसल सुरक्षित घर पहुँच सकती है। इससे पलायन के कारण परिवार में मजदूरों की कमी से होने वाला नुकसान भी घटता है। महिलाएँ कटाई और भण्डारण में बड़ी भूमिका निभाती हैं, इसलिए प्रशिक्षण और निर्णय में उनकी भागीदारी जरूर रखें।

3. सुखाई : भण्डारण की सबसे जरूरी कड़ी

पक्का खलिहान न हो तो तिरपाल का उपयोग करें। पथरीली जमीन पर सीधे अनाज सुखाने से कंकड़ – मिट्टी मिल जाती है और दाने टूटते हैं। एक अच्छी तिरपाल कई साल काम आती है और स्वयं – सहायता समूह या गाँव के स्तर पर साझा खरीदी जा सकती है।

मक्का : भुट्टों को छिलके सहित 2–3 दिन धूप में सुखाएँ, फिर छिलका हटाकर और सुखाएँ। भुट्टों को मचान या छप्पर के नीचे हवादार जगह पर टाँगकर सुखाना पारंपरिक और कारगर तरीका है। दाने निकालने के बाद उन्हें फिर से धूप में सुखाएँ।

घरेलू जाँच : अनाज के दाने को दाँतों से काटने पर कड़क आवाज आए, या सूखे नमक के साथ बोतल में हिलाने पर नमक चिपके नहीं, तो अनाज सूखा माना जा सकता है।

सुरक्षित नमी स्तर (सामान्य अनुशंसा):

फसल	नमी
मक्का, धान, ज्वार-बाजरा	लगभग 12-13%
दलहन (उड़द, अरहर)	9-10%
मूंगफली (दाना)	7-8%

सुखाई करते समय अनाज को पतली परत में फैलाएँ और बीच–बीच में पलटें। मुर्गी, बकरी और पशुओं से बचाव के लिए निगरानी रखें।

4. सुरक्षित और टिकाऊ भण्डारण

भण्डार की तैयारी : कोठी, मटके या कमरे की भण्डारण से पहले सफाई करें। पुराने दाने, धूल और जाले हटाएँ, और दीवार–फर्श की दरारें मिट्टी–गोबर या सीमेंट से बंद करें।

बोरियों को सीधे फर्श पर न रखें। लकड़ी के पटरों या पत्थरों पर रखें और दीवार से 30–50 सेमी दूर रखें, ताकि नमी और चूहे से बचाव हो।

कच्चे घरों में जमीन की नमी ऊपर चढ़ती है, इसलिए पुआल या पॉलीथीन की परत के ऊपर पटरे बिछाएँ।

वायुरोधी (हरमेटिक) बैग : **PICS** या सुपर ग्रेन बैग जैसे दोहरी–तिहरी परत वाले बैग में कीटों को हवा नहीं मिलती और वे बिना किसी रसायन के मर जाते हैं। मक्का, दलहन और बीज के लिए ये विशेष उपयोगी हैं।

शर्त यह है कि अनाज पूरी तरह सूखा हो और बैग का मुँह कसकर बाँधा जाए। बैग को चूहों से बचाने के लिए बाहर से बोरी में रखें। ये बैग महँगे लगते हैं, पर कई बार उपयोग हो सकते हैं। गाँव या समूह के स्तर पर साझा खरीद लागत घटाती है। इनकी उपलब्धता और अनुदान की जानकारी अपने कृतज्ञ से लें।

पारंपरिक और जैविक उपाय : बाँस और मिट्टी की कोठी अनाज को ठंडा और सूखा रखती है। इसकी नियमित लिपाई और मरम्मत करते रहें। अनाज में सूखी नीम की पत्तियाँ या नीम के बीज का चूर्ण मिलाएँ।

दलहनों में हल्की मात्रा (लगभग 5 मिली प्रति किलो) खाद्य तेल मिलाने से घुन का प्रकोप घटता है।

सूखी राख और हल्दी छोटे स्तर पर सहायक हैं।

रसायन का सीमित उपयोग : धूम्रीकरण केवल प्रशिक्षित व्यक्ति से और निर्देशानुसार कराएँ। रसायन वाला अनाज रखे कमरे में परिवार को न सुलाएँ, खासकर बच्चों और गर्भवती महिलाओं को।

5. मक्का और मूंगफली में एफ्लाटॉक्सिन से सावधानी

इस अंचल में मक्का मुख्य भोजन भी है, इसलिए गीले मौसम में फफूँद का खतरा सीधे परिवार के स्वास्थ्य से जुड़ा है।

फफूँद लगे, काले–हरे या बदबूदार भुट्टे और दाने अलग करें। उन्हें न खाएँ, न पशुओं को खिलाएँ।

तुड़ाई के बाद जल्दी से जल्दी सुखाई करें और सुखाने के बाद ही भण्डारित करें।

गीले मौसम में हर 15 दिन भण्डार का निरीक्षण करें। गर्माहट, गंध या जाले दिखें तो तुरंत अनाज को धूप में सुखाकर साफ करें।

6. बीज और स्थानीय किस्मों का संरक्षण

अगले साल के बीज के लिए सबसे स्वस्थ और अच्छे भुट्टे, फलियाँ और बालियाँ खेत में ही चुनकर अलग रखें।

बीज को राख या नीम के साथ अलग मटके या हरमेटिक बैग में रखें और उस पर किस्म तथा तारीख का टैग लगाएँ।

कोदो, कुटकी, सावाँ, बटी जैसे लघु अनाज और स्थानीय मक्का की किस्में कम पानी और पहाड़ी जमीन में टिकती हैं, पर कम होती जा रही हैं। गाँव के स्तर पर सामुदायिक बीज बैंक बनाकर इनका आदान–प्रदान और संरक्षण किया जा सकता है।

7. फसल अवशेष : चारा और खाद :

मक्का की कड़बी और धान का पुआल पशुओं के लिए मूल्यवान चारा है। अवशेषों को जलाएँ नहीं। इन्हें सुखाकर छप्पर या ऊँचे मचान पर ढककर रखें, ताकि बारिश से सड़ें नहीं।

बचा हुआ अवशेष गोबर के साथ कम्पोस्ट या वर्मीकम्पोस्ट बनाने में उपयोग करें, जिससे ढालू खेतों की उर्वरता बनी रहे।

पहाड़ी ढालों पर अवशेष और मेड़बंदी मिट्टी के कटाव को रोकने में मदद करते हैं।

किसान भाई–बहनों के लिए त्वरित सूची :

चरण क्या करे क्या न करें

कटाई पकने पर, मौसम देखकर, सामूहिक श्रम से बारिश में भीगने के लिए खेत में न छोड़ें सुखाई तिरपाल पर पतली परत में, मचान पर टाँगकर गीला अनाज न भरें, पथरीली जमीन पर सीधे न सुखाएँ भण्डारण सूखा, ऊँचा, चूहा–रोधी स्थानीय हरमेटिक बैग फर्श–दीवार से सटाकर बोरी न रखें। सुरक्षा नीम, तेल, राख जैसे स्थानीय उपाय रसायन का अनावश्यक उपयोग न करें।

बीज बेहतर दाने अलग रखें, सामुदायिक बीज बैंक को अपनाएँ सब कुछ बेचकर बीज के लिए बाजार पर निर्भर न रहें। अवशेष चारा, कम्पोस्ट, मल्च जलाएँ नहीं राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश की सीमा पर बसे आदिवासी किसानों के पास कटाई और भण्डारण का पीढ़ियों पुराना ज्ञान हैरू मचान पर टँगे भुट्टे, मिट्टी की कोठियाँ, नीम और राख, बीज बचाने की परंपरा और सामूहिक श्रम। इस ज्ञान में सही नमी जाँच, वायुरोधी बैग, साझा गोदाम और सहकारी बिक्री जैसी आधुनिक पद्धतियाँ जोड़ दी जाएँ, तो पलायन से जूझते परिवारों की उपज भी बचेगी और आय भी बढ़ेगी। हर बचाया हुआ दाना आदिवासी परिवार की खाद्य और पोषण सुरक्षा की मजबूती है।

रोशनी की जड़े–जब जंगल से जलता है गाँव का दीया

दीपावली की आहट होते ही शहर जगमगा उठते हैं। बाजारों में मिठाइयों की खुशबू, रंग – बिरंगी रोशनी और सजावट की होड़ दिखाई देने लगती है। लेकिन रतलाम जिले के बाजना ब्लॉक में स्थित खेरियापाड़ा गाँव की गलियों में जब दीपावली का पहला दीया जलता है, तो उसकी रोशनी किसी बाजार से खरीदी गई वस्तु की मोहताज नहीं होती। यहाँ रोशनी की जड़ें सीधे जंगल की मिट्टी, पहाड़ियों की हरियाली और आदिवासी महिलाओं के अटूट हौसले से जुड़ी हैं।

यहाँ दीपावली केवल एक त्यौहार नहीं, बल्कि प्रकृति, पशुधन, पूर्वजों की स्मृति और प्रकृति के पोषण के प्रति आभार व्यक्त करने का एक जीवंत माध्यम है। इस गाँव में जब महिलाएँ घर के आँगन को गोबर से लीपती हैं, तो वे केवल सफाई नहीं कर रहीं होती–वे **''गोवर्धन बावजी''** और **''उकेड़ा''** के रूप में अपनी मिट्टी और मवेशियों को नमन कर रही होती हैं। माही नदी (माही माता) के जल की पूजा और जंगलों से मिले प्राकृतिक संसाधनों और पशुधन के प्रति सम्मान इस बात का जीवंत प्रमाण है कि आदिवासी जीवन में प्रकृति और संस्कृति किस तरह एक–दूसरे में रचे–बसे हैं।

जंगल : आस्था, पोषण और आर्थिक स्वावलंबन का आधार – अक्टूबर का महीना आते ही जंगल का मिजाज बदलने लगता है। आँवला और जामफल पकने लगते हैं, पहाड़ियों पर सीताफल की मिठास घुल जाती है और खेतों में रबी की फसल की तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं। आदिवासी समुदाय के लिए जंगल केवल पेड़ों का झुरमुट नहीं है, यह उनकी आस्था का केंद्र और पोषण का मुख्य स्रोत है। जहाँ सीताफल और आँवला बच्चों व महिलाओं के आहार में आवश्यक पोषण और विटामिन **C** भरते हैं, वहीं ये फल उनकी आर्थिक रीढ़ भी बनते हैं।

इसी जमीनी संदर्भ से उभरती है खेरियापाड़ा की महिला किसान मंगू बाई डिन्डोर (पत्नी लक्ष्मण डिन्डोर) की कहानी।

मंगू बाई ने अपने खेत और पास की पहाड़ी पर प्राकृतिक रूप से उगे सीताफल के पेड़ों को केवल एक मौसमी फल नहीं माना, बल्कि अपनी मेहनत और पारंपरिक ज्ञान से उसे समृद्धि का जरिया बना दिया। त्यौहारों के समय में, उन्होंने इन सीताफलों को एकत्र कर और बाजार तक पहुँचाकर रूपये 42,000 की आमदनी प्राप्त की।

यह रू. 42,000 केवल एक संख्या नहीं है। यह मंगू बाई की आत्मनिर्भरता, उनके श्रम और स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों की असीम क्षमता का प्रतीक है।

स्त्री – शक्ति और पारिस्थितिकी का अनोखा संगम : आदिवासी महिलाओं की भूमिका केवल घर – परिवार संभालने या पूजा की थाली सजाने तक सीमित नहीं है। वे इस पारंपरिक ज्ञान की असली संरक्षक हैं –

ऋतु ज्ञान : किस मौसम में कौन–सा फल पकेगा और उसका सही उपयोग क्या है।

टिकाऊ दोहन : पेड़ों को नुकसान पहुँचाए बिना सुरक्षित तरीके से फल संग्रह करना।

पारिस्थितिक संतुलन : जंगलों की जैव विविधता को सुरक्षित रखते हुए अपने परिवार का पोषण और आजीविका सुनिश्चित करना।

मंगू बाई जैसी महिलाएँ दर्शाती हैं कि जब महिलाओं के पारंपरिक ज्ञान और श्रम को सम्मान मिलता है, तो **''सच्चा स्वराज''** और **''सच्ची खेती''** का सपना सच होने लगता है। वाग्धारा की इसी मूल भावना – जहाँ प्रकृति का बिना शोषण किए, उसका संरक्षण करते हुए आजीविका सहेजी जाती हैकृको खेरियापाड़ा गाँव ने जीकर दिखाया है।

बाजार की जगमगाहट से परे : एक विचारणीय सवाल–

खेरियापाड़ा की यह कहानी आज हम सभी के सामने एक सवाल छोड़ती है : क्या दीपावली केवल बाजार से सामान खरीदने और जगमगाती रोशनी तक सीमित है?

मंगू बाई का यह सफर हमें याद दिलाता है कि जंगल समृद्ध होंगे, तो समाज समृद्ध होगा। इस दीपावली, असली रोशनी वही है जो प्रकृति के साथ हमारे जुड़ाव को रोशन करे और उन आदिवासी समुदाय के ज्ञान को सलाम करे, जो जंगल से दीया जलाकर पूरे समुदाय को आत्मनिर्भरता की ओर ले जा रही हैं।

खेत की बात/फसल विधि : जंगल से दीया-हमारे महिलाओं का दीपावली सफर

अक्टूबर की सुबह जब वागड़ अंचल की पहाड़ियों पर हल्की धुंध उतरती है, तो फलियों और टोलों में एक अलग ही हलचल सुनाई देती है। मानसून विदा ले चुका है, मक्का और धान के खेत कटाई के अंतिम पड़ाव पर हैं और रबी की बुवाई की आहट हवा में घुलने लगी है। जंगल की ढलानों पर आंवला के पेड़ पीले–हरे फलों से लदे हैं, घर–आँगन के अमरूद, जिन्हें यहाँ प्यार से जाम कहा जाता है, पककर मीठे हो चले हैं। ऐसे ही मौसम में दीपावली दस्तक देती है। शहरों में यह त्यौहार बाजार की रौनक से शुरू होता है, लेकिन हमारे अंचल में दीपावली की शुरुआत जंगल से होती है। और इस पूरी यात्रा के केंद्र में, सबसे आगे, वे महिलाएँ खड़ी होती हैं जो सिर पर टोकरी और आँखों में उजाले के सपने लिए रोज पगडंडियों से गुजरती हैं।

जंगल, घर का ही विस्तार – हमारे समाज के लिए जंगल कोई दूर की जगह या कमाई का साधन भर नहीं है। वह घर का ही विस्तार है, जहाँ से रसोई की लकड़ी, बच्चों का पोषण, पशुओं का चारा, बीमारियों की दवा और त्यौहारों का सामान मिलता है। महुआ, टिमरू के पत्ते, आंवला, गोंद, शहद, बाँस और तरह–तरह की जड़ी–बूटियाँ इसी जंगल की देन हैं। इस देन को सहेजने और बरतने का सबसे गहरा ज्ञान महिलाओं के पास है। कौन–सा फल किस पखवाड़े में पकेगा, किस पेड़ की कौन–सी डाल काटनी नहीं है, किस जड़ का काढ़ा किस तकलीफ में काम आएगा, यह सब किसी किताब में दर्ज नहीं, बल्कि माँ से बेटी तक चलती आई मौखिक विरासत है। यही विरासत इस इलाके की असली पूँजी है और इसी पूँजी से दीपावली का उजाला बुना जाता है।

आँगन की लिपाई से दीये की बाती तक – दीपावली से हफ्तों पहले घरों में तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं। महिलाएँ मिट्टी, गोबर और छुई से कच्चे घरों की दीवारें और आँगन लीपती हैं। गेरू व खड़िया से दीवारों पर बनने वाले पारंपरिक चित्र और अलंकरण सिर्फ सजावट नहीं हैं, वे प्रकृति और पुरखों के प्रति कृतज्ञता की भाषा हैं।

मिट्टी के दीये गाँव के कुम्हार की चाक से आते हैं और उन्हें सँवारने का काम घर की महिलाएँ करती हैं। इस दीये में न बिजली का बिल है, न प्लास्टिक का कचरा और न किसी दूर के कारखाने की मजबूरी। मिट्टी से बना दीया जलकर फिर मिट्टी में ही लौट जाता है।

आंवला और जाम : मौसम की मिठास, घर की सेहत – अक्टूबर का महीना आंवला और जाम के पकने का महीना है। जंगल और बाड़ी से तोड़े गए इन फलों को महिलाएँ केवल ताजा ही नहीं खातीं, बल्कि उन्हें आगे के महीनों के लिए सहेज भी लेती हैं। आंवले को सुखाकर, उबालकर या गुड़ में पागकर रखा जाता है। कहीं उसका मुरब्बा बनता है, कहीं चूर्ण और कहीं अचार। विटामिन–सी से भरपूर आंवला सर्दियों में बच्चों और बुजुर्गों की सेहत का सहारा बनता है, और जाम पोषण के साथ–साथ आँगन की मिठास भी बढ़ाता है। अब इन फलों की कहानी केवल रसोई तक सीमित नहीं रही। जब महिलाएँ समूह बनाकर आंवला, जाम और दूसरे वन–उत्पादों की छँटाई, सुखाई और पैकिंग करती हैं, तो वही फल आमदनी का जरिया बन जाते हैं।

पशुधन, खेत और बीज : उजाले के बाद की तैयारी – दीपावली के साथ ही हमारे अंचल में पशुधन के पूजन की परंपरा भी जुड़ी है। गाय, बैल और बकरी यहाँ परिवार के सदस्य जैसे हैं। महिलाएँ उन्हें नहलाती हैं, सजाती हैं, उनके लिए विशेष भोजन तैयार करती हैं और उनके प्रति आभार जताती हैं। यह कृतज्ञता केवल भावना नहीं, खेती का वैज्ञानिक चक्र भी है। पशुओं का गोबर और मूत्र खेत की उर्वरता का आधार बनता है, और यही जैविक खाद रबी की फसल को पोषण देती है।

रबी की तैयारी के इस दौर में सबसे महत्वपूर्ण काम है बीजों का चयन और संरक्षण, और यह जिम्मेदारी भी प्रायः महिलाओं के कंधों पर होती है। दूध मोगर जैसी देशी मक्का, काला कमोद जैसी धान की पुरानी किस्में और जंगली फलों के बीज, सब इन्हीं महिलाओं की जतन से आज तक बचे हैं।

पलायन से वापसी : जब घर लौटना त्यौहार बन गया – इस पूरे इलाके की एक कड़वी सच्चाई रही है मौसमी पलायन। सीमित जमीन, बारिश पर टिकी खेती और रोजगार की कमी के कारण बड़ी संख्या में परिवार हर साल गुजरात और दूसरे राज्यों के शहरों में मजदूरी करने जाते रहे। दीपावली पर उनका लौटना उत्सव भी रहा है और टीस भी, क्योंकि कुछ ही दिनों बाद फिर लौट जाने की मजबूरी सामने खड़ी रहती थी। अब तस्वीर धीरे–धीरे बदल रही है। प्राकृतिक खेती से लागत घटी है, बाड़ी में सब्जियों की खेती और पौधशाला जैसे छोटे उद्यमों से सालभर की आमदनी का रास्ता खुला है। बैंगन, ग्वार फली और दूसरी सब्जियाँ उगाने वाली महिलाएँ अब बाजार तक अपनी उपज खुद पहुँचा रही हैं। जिन घरों से कभी पूरा परिवार काम की तलाश में निकल जाता था, वहाँ अब महिलाएँ बीज, पौध और सब्जी का काम सँभालकर परिवार को गाँव में ही थामे हुए हैं। ऐसे घरों में दीपावली का दीया इस भरोसे के साथ जलता है कि अगली सुबह भी यहीं, अपने खेत में, अपने लोगों के बीच होना है।

समूह की ताकत और बराबरी की रोशनी – इस बदलाव की सबसे मजबूत नींव महिला समूह हैं। हर माह की बैठक में जुटकर थोड़ी–थोड़ी बचत करने वाली महिलाएँ आज अपने गाँव की आर्थिक और सामाजिक ताकत बन चुकी हैं। बचत से मिले छोटे ऋण ने उन्हें बीज, खाद, पशु और छोटे कारोबार के लिए पूँजी दी है। इससे भी बड़ी बात यह है कि इन बैठकों ने उन्हें बोलने का मंच दिया। जो महिलाएँ कभी घूँघट की ओट से बात करती थीं, वे आज ग्राम सभा में अपनी राय रखती हैं, पोषण और स्वास्थ्य की जानकारी दूसरी महिलाओं तक पहुँचाती हैं, और बच्चों की शिक्षा तथा पंचायत की योजनाओं में हक की माँग उठाती हैं। यह सच है कि इस अंचल में महिला साक्षरता अब भी पुरुषों की तुलना में कम है, और कुपोषण तथा स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुँच की चुनौतियाँ अभी बनी हुई हैं। लेकिन अनुभव बताता है कि जहाँ महिलाओं को संसाधन, प्रशिक्षण और अवसर मिलते हैं, वहाँ नतीजे उम्मीद से कहीं बेहतर आते हैं।

जंगल बचेगा, तो दीया जलेगा – आज जंगल पर संकट के बादल भी हैं। अनियमित बारिश, बढ़ता तापमान, कटते पेड़ और घटती जैव–विविधता सीधे उन्हीं परिवारों को प्रभावित करती है जिनका जीवन जंगल से जुड़ा है। यहाँ भी महिलाएँ आगे आती हैं। पारंपरिक देववनों और पवित्र उपवनों की रक्षा, बीज बैंकों का संचालन, घर–बाड़ी और खेत की मेड़ों पर पौधारोपण तथा जल–संरक्षण के कामों में उनकी भागीदारी निर्णायक है। वे जानती हैं कि जंगल केवल आज का सहारा नहीं, आने वाली पीढ़ियों की अमानत है। इसीलिए वे फल तोड़ती हैं, पर पेड़ को चोट नहीं पहुँचातीं, और जितना लेती हैं, उससे ज्यादा लौटाने की कोशिश करती हैं।

यही वह दृष्टि है जो हमारी महिलाओं की दीपावली को अलग बनाती है। उनके लिए लक्ष्मी का अर्थ केवल धन नहीं, बल्कि पर्याप्त अनाज, स्वच्छ पानी, हरा–भरा जंगल, स्वस्थ पशु और सुरक्षित बीज है। उनकी पूजा में सोने–चाँदी से ज्यादा जगह मिट्टी, फसल और पेड़ को मिलती है।

एक दीया, अनगिनत उम्मीदें – इस दीपावली जब हम अपने घरों में दीये सजाएँ, तो कुछ पल ठहरकर उस दीये के पीछे की पूरी यात्रा को याद करें – उस मिट्टी को जिसे किसी कुम्हार ने गूँथा, उस बाती को जो किसी महिला की उँगलियों से बटी गई, उस तेल को जो किसी जंगल के बीज से निकला, और उस जंगल को जिसे किसी माँ ने अपने बच्चों के लिए बचाकर रखा। जंगल से चला यह दीया हमें याद दिलाता है कि असली उजाला वही है जो सबको साथ लेकर चले, जो प्रकृति से लेकर उसे लौटाना भी जानता हो।

हमारी महिलाओं का यह सफर हमें सिखाता है कि विकास का रास्ता बड़ी मशीनों और ऊँची इमारतों से ही नहीं गुजरता, वह गाँव की पगडंडी, जंगल की छाँव और महिलाओं के हौसले से भी होकर जाता है। जब वे सशक्त होती हैं, तो पूरा समाज रोशन होता है। इसलिए इस पर्व पर उनके श्रम, उनके ज्ञान और उनके सपनों के नाम भी एक दीया जरूर जलाइए। शुभ दीपावली।

बच्चों का स्वास्थ्य/पोषण : हर मौसम की थाली, स्वस्थ बचपन की खुशहाली

त्यौहारों की मिठास, परंपरा का स्वादः नवरात्रि, दशहरा व दीपावली में स्थानीय व्यंजनों से स्वास्थ्य व पोषण की खुशहाली

हमारे त्यौहार केवल पूजा–पाठ और उत्सव तक सीमित नहीं हैं। इनके साथ हमारी खान–पान की परंपराएँ, स्थानीय खाद्य पदार्थ और परिवार के साथ मिलकर भोजन सेवन करने की संस्कृति भी जुड़ी हुई है। नवरात्रि, दशहरा और दीपावली के दिनों में घरों में विशेष पकवान बनाए जाते हैं। बड़े–बुजुर्ग अपनी पुरानी रसोई की यादों और पारंपरिक व्यंजनों को अगली पीढ़ी तक पहुँचाते हैं और बच्चे इन व्यंजनों के स्वाद से त्यौहार की खुशी महसूस करते हैं।

हमारे आसपास उपलब्ध बाजरा, मक्का, ज्वार, चना, मूंगफली, तिल, दालें, हरी सब्जियाँ, मौसमी फल और गुड़ जैसे खाद्य पदार्थ लंबे समय से स्थानीय भोजन का हिस्सा रहे हैं। इन्हीं से बने कई पारंपरिक व्यंजन स्वाद के साथ पोषण भी देते हैं।

आज त्यौहारों के दौरान बाजार की मिठाइयाँ, नमकीन और पैकेट में जो खाद्य पदार्थ भी भोजन का हिस्सा बन गए हैं। ऐसे में त्यौहारों की खुशी के साथ बच्चों के स्वास्थ्य और पोषण का ध्यान रखना जरूरी है। स्थानीय खाद्य पदार्थों को भोजन में जगह देकर और पारंपरिक व्यंजनों को संतुलित रूप में अपनाकर त्यौहार के स्वाद और पोषण दोनों को साथ रखा जा सकता है।

आदिवासी जीवन में त्यौहार और भोजन का रिश्ता– आदिवासी समुदायों में त्यौहार प्रकृति, खेती, पशुधन, परिवार और सामुदायिक जीवन से जुड़े रहे हैं। भोजन भी इसी जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा है। खेत में पैदा होने वाले अनाज, घर के आसपास मिलने वाली सब्जियाँ, दालें, फल, बीज और अन्य स्थानीय खाद्य सामग्री परिवार की रसोई तक पहुँचती हैं।

त्यौहारों पर इन्हीं खाद्य पदार्थों से विशेष व्यंजन तैयार किए जाते हैं। इसलिए पारंपरिक भोजन केवल स्वाद की बात नहीं है, बल्कि यह स्थानीय खाद्य विविधता और पीढ़ियों से चली आ रही भोजन संस्कृति को भी दर्शाता है। बच्चों को इस परंपरा से जोड़ना भी जरूरी है। जब बच्चे अपने घर में बनने वाले व्यंजन, उनमें इस्तेमाल होने वाली सामग्री और उनके पीछे की कहानी जानते हैं, तो वे अपने स्थानीय भोजन को बेहतर तरीके से समझते हैं।

नवरात्रि में भोजन की परंपरा और पोषण – नवरात्रि के दौरान कई परिवार व्रत रखते हैं। इन दिनों भोजन की दिनचर्या में बदलाव आता है और कुट्टू, सिंघाड़ा, राजगीरा, साबूदाना, शकरकंद, फल, दूध, दही, मूंगफली और मखाने जैसे खाद्य पदार्थों का उपयोग बढ़ जाता है।

इन खाद्य पदार्थों से भी तरह–तरह के पारंपरिक व्यंजन बनाए जाते हैं। बच्चों के लिए भोजन तैयार करते समय उनकी उम्र और भोजन की आवश्यकता को ध्यान में रखना जरूरी है। केवल तली हुई चीजों या एक ही प्रकार के खाद्य पदार्थ पर निर्भर रहने के बजाय फल, दूध–दही, राजगीरा, मूंगफली, शकरकंद जैसे उपलब्ध खाद्य पदार्थों को भोजन में शामिल किया जाता है।व्रत का भोजन भी स्वाद, विविधता और पोषण से भरपूर रखा जा सकता है।

दशहरा और घर के पारंपरिक व्यंजन – दशहरे के अवसर पर परिवार और समुदाय के साथ मिलकर भोजन करने की परंपरा है। कई घरों में इस दिन विशेष पकवान बनाए जाते हैं। यही अवसर बच्चों को अपने पारंपरिक भोजन से परिचित कराने का भी है। **बाजरा, मक्का, ज्वार, चना, दाल, मूंगफली और तिल जैसे स्थानीय खाद्य पदार्थों से बने व्यंजन भोजन में विविधता लाते हैं।**

दीपावली की मिठास में स्थानीय स्वाद – दीपावली आते ही घरों में मिठाई और पकवानों की तैयारी शुरू हो जाती है। लड्डू, चकली, चिवड़ा, गुझिया, नमकीन और अलग–अलग तरह के पारंपरिक व्यंजन घर की रसोई को स्वाद और खुशबू से भर देते हैं। बच्चों के लिए भी दीपावली की मिठाइयाँ खास आकर्षण होती हैं। ऐसे में मिठाई को पूरी तरह रोकना नहीं, बल्कि मिठाई के साथ पौष्टिक भोजन को भी बराबर महत्व देना जरूरी है। त्यौहार की थाली में घर के भोजन के साथ थोड़ी मात्रा में मिठाई, फल और स्थानीय खाद्य पदार्थ शामिल रहते हैं तो बच्चों का भोजन संतुलित बना रहता है।

तिल और गुड़ – तिल और गुड़ से बने लड्डू या पट्टी कई क्षेत्रों के पारंपरिक व्यंजनों में शामिल हैं। तिल में प्रोटीन, वसा और कैल्शियम जैसे पोषक तत्व पाए जाते हैं। गुड़ पारंपरिक मिठास का स्रोत है।

मूंगफली और गुड़ – मूंगफली और गुड़ से बनी चिक्की या लड्डू त्यौहारों में पसंद किए जाने वाले पारंपरिक खाद्य पदार्थ हैं। मूंगफली ऊर्जा और प्रोटीन का स्रोत है।

चना और गुड़ – भुना चना और गुड़ सरल स्थानीय खाद्य संयोजन है। इसे नाश्ते में भी शामिल किया जाता है।

स्थानीय अनाज से बने व्यंजन – बाजरा, मक्का और ज्वार जैसे अनाज से बने व्यंजन हमारे भोजन की विविधता बढ़ाते हैं। इनका उपयोग रोटी, लड्डू और अन्य पारंपरिक पकवानों में किया जाता है।

बच्चों की थाली में सिर्फ मिठाई नहीं, पोषण भी त्यौहारों में बच्चे मिठाई और नमकीन की ओर अधिक आकर्षित होते हैं। कई बार इसी वजह से वे दाल, सब्जी, फल और सामान्य भोजन कम खाते हैं। ऐसे समय में परिवार बच्चों की थाली को लेकर थोड़ा ध्यान रखता है।

बच्चों के भोजन में–अनाज – बाजरा, मक्का, ज्वार, गेहूँ दालें–मूंग, चना, अरहर, मसूर सब्जियाँ–स्थानीय और मौसमी सब्जियाँ फल–मौसम के अनुसार उपलब्ध फल बीज और मेवे–तिल, मूंगफली आदि दूध और दही, परिवार में उनकी उपलब्धता के अनुसार शामिल किए जाते हैं।

मिठाई और नमकीन त्यौहार के भोजन का हिस्सा हैं, लेकिन बच्चों के पूरे भोजन का आधार नहीं। बच्चे की थाली में विविधता जितनी अधिक होगी, पोषण भी उतना बेहतर होगा।

मिठाई के साथ पानी और स्वच्छता भी जरूरी – त्यौहारों में भोजन के साथ बच्चों के पानी पीने की आदत पर भी ध्यान देना जरूरी है। बहुत अधिक मीठे पेय की जगह साफ और सुरक्षित पानी को प्राथमिकता दी जाती है।

बाजार के स्वाद के बीच घर की रसोई – त्यौहारों के समय बाजार में मिठाइयों और पैकेट में जो खाद्य पदार्थों की भरमार रहती है। बच्चों को भी ये चीजें आकर्षित करती हैं। लेकिन हमारे घर की रसोई में उपलब्ध खाद्य पदार्थों से भी कई स्वादिष्ट व्यंजन तैयार होते हैं। इनमें परिवार की पसंद के अनुसार तेल और मिठास की मात्रा रखी जाती है और स्थानीय सामग्री का उपयोग होता है।

बच्चों को बनाएं अपनी रसोई का छोटा साथी – त्यौहारों में बच्चों को भोजन की तैयारी में छोटी–छोटी जिम्मेदारियाँ देना एक अच्छी सीख बनती है। बच्चे परिवार के साथ अनाज और दालों की पहचान कर सकते हैं। तिल, मूंगफली, चना और अन्य खाद्य पदार्थों को पहचान सकते हैं। पारंपरिक व्यंजन के बारे में परिवार के बड़े सदस्यों से जानकारी ले सकते हैं। अपने घर में बनने वाले त्यौहार के खास व्यंजन के बारे में लिख सकते हैं। यह जान सकते हैं कि उनके गाँव में कौन–कौन से खाद्य पदार्थ स्थानीय रूप से उपलब्ध हैं। इस तरह त्यौहार बच्चों के लिए खाने, सीखने और अपनी परंपरा को समझने का अवसर बनता है।

त्यौहार का संदेश घर से गाँव तक – जब परिवार अपने स्थानीय खाद्य पदार्थों को महत्व देता है, तो उसका असर बच्चों के भोजन से आगे भी दिखाई देता है। स्थानीय अनाज और पारंपरिक व्यंजनों की मांग बनी रहती है। परिवार की पुरानी खाद्य परंपराएँ जीवित रहती हैं और बच्चों को अपने क्षेत्र के भोजन की पहचान मिलती है।

इस दीपावली घर की थाली में स्थानीय अनाज हो, पारंपरिक स्वाद हो, बच्चों के लिए पौष्टिक भोजन हो और परिवार के साथ बैठकर खाने की खुशी हो।त्यौहार की खुशियाँ तभी पूरी लगती हैं जब घर के बच्चे स्वस्थ और प्रसन्न रहें। हमारी रसोई में मौजूद स्थानीय खाद्य पदार्थ इस खुशी को और समृद्ध बनाते हैं। त्यौहार हमें अपनी जड़ों से जुड़ने का अवसर देते हैं। हमारी रसोई में मौजूद स्थानीय अनाज, दालें, बीज, सब्जियाँ और पारंपरिक व्यंजन केवल भोजन नहीं, बल्कि हमारी मिट्टी, संस्कृति और पीढ़ियों से चले आ रहे ज्ञान का हिस्सा हैं। इन खाद्य परंपराओं को सहेजते हुए यदि हम अपनी थाली में विविधता और संतुलन बनाए रखें, तो त्यौहार का स्वाद भी बना रहता है और भोजन का महत्व भी।

सामाजिक मुद्दा (पलायन/बाल विवाह/बाल मजदूरी) : जंगल से दीया, किताब से उजाला

इस बार दीया केवल घर में नहीं, बच्चों के विचारों, सवालों और सपनों में भी जले

इस बार दीया केवल घर में नहीं, बच्चों के विचारों, सवालों और सपनों में भी जले अक्टूबर का महीना आदिवासी अंचल में अपने साथ कई रंग लेकर आता है। जंगलों में आंवला और जाम जैसे मौसमी फल दिखाई देने लगते हैं, खेतों में रबी की तैयारी शुरू हो जाती है और घरों में दीपावली की तैयारियों की हलचल बढ़ने लगती है। कहीं घर–आँगन की सफाई हो रही है, कहीं मिट्टी के दीये तैयार किए जा रहे हैं और कहीं बच्चे अपने परिवार के साथ त्यौहार की तैयारियों में हाथ बँटा रहे हैं।

इसी समय बच्चों और किशोर–किशोरियों की दुनिया में एक और महत्वपूर्ण पड़ाव आता है–अर्द्धवार्षिक परीक्षाएँ। किताबें खुलती हैं, कॉपियों में दोहराव शुरू होता है और परीक्षा की तैयारी के साथ–साथ मन में कई सवाल भी होते हैं–अच्छे अंक कैसे आएँगे? पढ़ाई के लिए पर्याप्त समय कैसे मिलेगा? घर के काम और पढ़ाई के बीच संतुलन कैसे बनेगा? आगे क्या पढ़ना है? भविष्य में क्या बनना है?

किशोरावस्था में ये सवाल और भी गहरे हो जाते हैं। यह वह उम्र है जब बच्चा धीरे–धीरे अपने बारे में, अपने आसपास की दुनिया के बारे में और अपने भविष्य के बारे में अपनी राय बनाना शुरू करता है। **वह केवल यह नहीं पूछता कि "मुझे क्या पढ़ना है?", बल्कि यह भी सोचने लगता है कि "मैं कौन हूँ?", "मेरी पहचान क्या है?" "मेरी पसंद और मेरी आवाज की क्या अहमियत है?" और "मैं अपने समुदाय के लिए क्या कर सकता/सकती हूँ?"**

यहीं से आदिवासी बाल स्वराज की यात्रा शुरू होती है।

दीपावली की रोशनी और बच्चों की दुनिया – आदिवासी समुदायों में प्रकृति केवल जीवन का आधार नहीं है, बल्कि संस्कृति, परंपरा और सामुदायिक पहचान का महत्वपूर्ण हिस्सा है। जंगल से मिलने वाले फल, पत्ते, लकड़ी और अन्य प्राकृतिक संसाधन परिवार और समुदाय के जीवन से जुड़े हैं। इसलिए जब बच्चे जंगल और प्रकृति के बीच बड़े होते हैं, तो उनके लिए पर्यावरण संरक्षण कोई अलग विषय नहीं, बल्कि उनके रोजमर्रा के जीवन का हिस्सा है।

दीपावली के अवसर पर यही अनुभव बच्चों की सीख का आधार बन सकता है।

एक बच्चा जब मिट्टी का दीया देखता है, तो वह केवल उसमें जलती लौ नहीं देखता। वह मिट्टी, पानी, मेहनत और उस व्यक्ति के श्रम को भी समझ सकता है जिसने उसे बनाया है। जब वह घर की सफाई में इस्तेमाल होने वाली चीजों के बारे में सोचता है, तो वह यह भी पूछ सकता है कि इनमें से क्या स्थानीय और प्राकृतिक है और क्या ऐसी चीज है जो पर्यावरण को नुकसान पहुँचा सकती है। जब बच्चे त्यौहार मनाने के तरीके पर स्वयं बातचीत करते हैं, विकल्प खोजते हैं और निर्णय लेते हैं, तब त्यौहार उनके लिए बाल स्वराज की सीख का अवसर बन जाता है।

बाल स्वराज का अर्थ केवल बच्चों के लिए गतिविधियाँ आयोजित करना नहीं है। इसका अर्थ है कि बच्चे अपनी बात कहें, सवाल पूछें, अपनी जरूरतों को पहचानें, दूसरों की बात सुनें और अपने जीवन तथा समुदाय से जुड़े विषयों पर सोचने और निर्णय लेने की क्षमता विकसित करें।

परीक्षा के दिनों में किशोर मन – अर्द्धवार्षिक परीक्षा का समय बच्चों के लिए उत्साह और तनाव दोनों लेकर आता है। विशेषकर किशोरावस्था में पढ़ाई को लेकर अपेक्षाएँ बढ़ने लगती हैं। परिवार चाहते हैं कि बच्चा अच्छे अंक लाए, शिक्षक चाहते हैं कि वह नियमित पढ़ाई करे और बच्चा स्वयं भी अपने भविष्य को लेकर सपने देखने लगता है।

लेकिन आदिवासी क्षेत्रों में बच्चों की दिनचर्या केवल स्कूल और किताबों तक सीमित नहीं होती। कई बच्चे घर के काम में सहयोग करते हैं। कुछ बच्चे खेती से जुड़े कामों में परिवार का हाथ बँटाते हैं। त्यौहारों के समय जिम्मेदारियाँ और बढ़ जाती हैं। किशोरियों के सामने यह चुनौती कई बार और अधिक दिखाई देती है। घर के काम, छोटे भाई–बहनों की देखभाल और परिवार की अन्य जिम्मेदारियों के बीच उन्हें अपनी पढ़ाई के लिए समय निकालना पड़ता है। ऐसे में परीक्षा की तैयारी केवल किताब खोलकर बैठ जाने का नाम नहीं रह जाती यह समय, जिम्मेदारी और अवसर के बीच संतुलन बनाने की प्रक्रिया भी बन जाती है।

इसलिए किशोर–किशोरियों से यह जानना और समझना महत्वपूर्ण है–

क्या उन्हें पढ़ने के लिए पर्याप्त समय मिलता है?

- क्या वे अपनी पढ़ाई से जुड़े निर्णयों में परिवार के सामने अपनी बात रख पाते हैं?
- क्या घर में लड़के और लड़कियों को पढ़ाई के लिए समान अवसर मिलता है?
- क्या वे अपनी पसंद के विषय और भविष्य के बारे में खुलकर बात कर सकते हैं?

इन सवालों के जवाब बच्चों की वास्तविक स्थिति को समझने के साथ–साथ उनके भीतर निर्णय लेने की क्षमता को भी पहचानने में मदद करते हैं।

बालिकाओं के लिए रोशनी का अर्थ – दीपावली में घर को रोशन करने के लिए दीया जलाया जाता है। लेकिन एक किशोरी के लिए रोशनी का अर्थ हो सकता है–अपनी पढ़ाई जारी रखने का अवसर, अपनी बात कहने की आजादी, अपने भविष्य के बारे में निर्णय लेने का अधिकार, अपने सपनों को परिवार के सामने रखने का साहस, और अपने जीवन से जुड़े फैसलों में भागीदारी।

आदिवासी बाल स्वराज की दृष्टि से किशोरियों की आवाज को सुनना इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि वे अपने परिवार और समुदाय के वर्तमान के साथ–साथ भविष्य की भी महत्वपूर्ण हिस्सेदार हैं। जब एक किशोरी अपनी परीक्षा की तैयारी के लिए समय मांगती है, अपने भाई के समान पढ़ाई का अवसर चाहती है, स्कूल में अपनी बात रखती है या अपने समुदाय की किसी समस्या पर सवाल उठाती है, तो वह केवल अपनी व्यक्तिगत जरूरत की बात नहीं कर रही होती। वह अपने अधिकार और अपनी भागीदारी की जगह बना रही होती है।

यही बाल स्वराज की सही मायने में शुरुआत है।

किताब से ज्ञान और जंगल से अनुभव–दोनों मिलकर बच्चे की सीख को समृद्ध करते हैं। सवाल पूछने वाला बच्चा ही आगे बढ़ता है, किशोरावस्था में सवाल बढ़ते हैं और यही सवाल सीखने की ताकत बन सकते हैं।

- "हमारे गाँव में लड़कियों को घर के काम की जिम्मेदारी अधिक क्यों मिलती है?"
- "क्या त्यौहार बिना प्रकृति को नुकसान पहुँचाए मनाया जा सकता है?"
- "अगर मुझे आगे पढ़ना है तो मुझे किन अवसरों के बारे में जानना चाहिए?"
- "हम अपने गाँव के जंगल को बचाने के लिए क्या कर सकते हैं?"
- "क्या बच्चों की भी गाँव के फैसलों में कोई भूमिका हो सकती है?"

ऐसे सवालों का तुरंत सही या गलत जवाब देना जरूरी नहीं। जरूरी यह है कि बच्चों को सवाल पूछने, चर्चा करने और अपने उत्तर खोजने का अवसर मिले। बाल स्वराज का आधार यही है–बच्चों के सवालों को महत्व देना।

त्यौंहार से सीख – तक दीपावली के अवसर पर बच्चों और किशोर–किशोरियों के साथ ऐसी छोटी गतिविधियाँ की जा सकती हैं जो उत्सव को सीख से जोड़ें। वे अपने गाँव में यह पता कर सकते हैं कि दीपावली से जुड़ी कौन–कौन सी स्थानीय परंपराएँ आज भी जीवित हैं। वे परिवार के बुजुर्गों से बातचीत करके जान सकते हैं कि पहले दीपावली कैसे मनाई जाती थी। वे यह भी समझ सकते हैं कि समय के साथ त्यौंहार मनाने के तरीके में क्या बदलाव आए हैं। बच्चे यह भी तय कर सकते हैं कि इस बार वे ऐसा क्या करेंगे जिससे त्यौंहार प्रकृति के लिए बेहतर हो–जैसे स्थानीय सामग्री का उपयोग, अनावश्यक कचरे को कम करना या सामूहिक रूप से पौधों और जलस्रोतों की देखभाल का संकल्प लेना।

इसी तरह परीक्षा की तैयारी को भी बच्चों की भागीदारी से जोड़ा जा सकता है। किशोर–किशोरियाँ अपने समूह में बैठकर यह तय कर सकते हैं कि वे परीक्षा से पहले अपना समय कैसे बाँटेंगे, किन विषयों में एक–दूसरे की मदद करेंगे और किस तरह तनाव को कम रखेंगे। इस प्रक्रिया में बच्चे केवल गतिविधि पूरी नहीं कर रहे होते। वे योजना बनाना, निर्णय लेना, जिम्मेदारी बाँटना और एक–दूसरे की मदद करना सीख रहे होते हैं। यही बाल स्वराज की वास्तविक सीख है।

बच्चों की रोशनी, समुदाय का भविष्य – जब हम आदिवासी बच्चों और किशोर–किशोरियों की बात करते हैं, तो हमें उन्हें केवल भविष्य के नागरिक के रूप में नहीं देखना चाहिए। वे आज भी अपने परिवार, स्कूल और समुदाय का हिस्सा हैं और आज भी उनके विचारों की अपनी अहमियत है। एक किशोर अपने गाँव की पानी की समस्या को समझ सकता है, एक किशोरी स्कूल छोड़ने वाली किसी सहेली के बारे में सवाल उठा सकती है, बच्चों का समूह गाँव में स्वच्छता या पर्यावरण पर पहल कर सकता है, वे अपने साथियों को पढ़ाई में मदद कर सकते हैं, वे परिवार में यह बातचीत शुरू कर सकते हैं कि लड़कियों और लड़कों को समान अवसर क्यों मिलने चाहिए। ऐसी छोटी–छोटी पहल ही धीरे–धीरे बच्चों में नेतृत्व, आत्मविश्वास और जिम्मेदारी की भावना विकसित करती हैं। बाल स्वराज का सपना ऐसे ही छोटे कदमों से मजबूत होता है।

आइये मिलकर प्रतिबद्ध तरीके से संकल्प लें–

"मैं प्रकृति का मित्र बनूँगा/बनूँगी। इस दीपावली कम कचरा, कम प्रदूषण और अधिक संवेदनशीलता के साथ त्यौंहार मनाऊँगा/मनाऊँगी। अपने साथियों के साथ मिलकर जंगल, जल, मिट्टी, पेड़–पौधों और जीव –जंतुओं की देखभाल करूँगा/करूँगी। मैं अपनी आवाज और अपने छोटे–छोटे कदमों से अपने गाँव को बेहतर बनाने में योगदान दूँगा/दूँगी।"

आदिवासी आजीविका की मूल्य श्रृंखला : खेत, जंगल और हुनर से बाजार तक

प्रस्तावना – वागड़ की पहचान केवल उसके पहाड़ों, जंगलों और नदियों से नहीं, बल्कि यहां के आदिवासी समुदाय की उस जीवन–पद्धति से है, जिसमें प्रकृति और मनुष्य अलग नहीं माने जाते। खेत का अनाज, आंगन की मुर्गी, बकरी और गाय, जंगल से मिलने वाला महुआ, तेंदूपत्ता, गोंद और अन्य वन उपज, महिलाओं के हाथों बने खाद्य पदार्थ और स्थानीय हुनर, ये सब मिलकर आजीविका का आधार बनते हैं। यहां आजीविका का अर्थ केवल नौकरी या मजदूरी नहीं है। परिवार खेत में अनाज उगाता है, पशु पालता है और जंगल से उपज लाता है। कुछ उत्पाद घर में उपयोग होते हैं, कुछ रिश्तेदारी और पड़ोस में बंटते हैं और कुछ बाजार में बिककर नकद आय देते हैं। जरूरत पड़ने पर कोई सदस्य मजदूरी या बाहर काम के लिए जाता है। इन धागों के बीच एक पूरी श्रृंखला दिखती हैरू उत्पादन, संग्रहण, छंटाई, प्रसंस्करण, पैकेजिंग, परिवहन, बिक्री और उपभोक्ता तक पहुंच। हर चरण उत्पाद का मूल्य बढ़ाता या घटाता है। समुदाय सबसे अधिक मेहनत उत्पादन और संग्रहण में करता है, लेकिन अंतिम मूल्य का बड़ा हिस्सा आगे की कड़ियों में चला जाता है। यदि किसान, पशुपालक, वन उपज संग्राहक और महिला उद्यमी प्रसंस्करण, गुणवत्ता, पैकेजिंग और बाजार से भी जुड़ें, तो उनकी मेहनत का बेहतर मूल्य उनके अपने हाथ में रह सकता है।

आजीविका केवल खेती तक सीमित नहीं – खेती आदिवासी आजीविका का महत्वपूर्ण आधार है, पर उसके साथ पशुधन, जंगल, जल, मजदूरी, स्थानीय व्यापार, हस्तकला और घरेलू उद्यम भी जुड़े हैं। छोटा किसान अपने खेत को केवल एक फसल की जमीन नहीं समझता। मेड़ पर पेड़ हैं, कहीं चारा है, कहीं सब्जी या फल के पौधे हैं, घर के पास पशु हैं और बरसात का पानी खेत और पशुओं, दोनों के काम आता है। खेत, आंगन, जंगल और पशुधन अलग–अलग व्यवस्थाएं नहीं, बल्कि एक–दूसरे से जुड़ी आजीविका व्यवस्था हैं।

इसी विविधता के सहारे आदिवासी परिवारों ने कठिन मौसम और आर्थिक संकट का सामना किया है। खेती कमजोर रहे तो पशुधन सहारा देता है, जंगल की उपज कुछ जरूरतें पूरी करती है, मजदूरी से नकद पैसा आता है और घर में बने खाद्य पदार्थ खर्च घटाते हैं। यही इस व्यवस्था की ताकत है।

खेती : उत्पादन से मूल्य संवर्धन तक – कृषि उत्पाद की मूल्य श्रृंखला खेत में बीज से शुरू होती है। स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल बीज का चयन, खेत की तैयारी, जैविक खाद, पानी का प्रबंधन, देखभाल और कटाई उत्पादन की पहली कड़ियां हैं। आदिवासी परिवारों के पास स्थानीय फसलों और बीजों का गहरा अनुभव है।

इसके बाद भंडारण और प्राथमिक प्रसंस्करण का चरण आता है। कई बार किसान तुरंत नकद पैसे की जरूरत में उपज बेच देता है। सुरक्षित भंडारण, बाजार की जानकारी या उपज को कुछ समय रोकने की क्षमता न हो, तो उसे कम कीमत पर बेचना पड़ सकता है। इसके उलट, उपज को साफ करके, छांटकर, सुखाकर और ठीक से संग्रहित किया जाए तो मूल्य में अंतर आता है। यहीं मूल्य श्रृंखला केवल खेती का विषय नहीं रहती, बल्कि संगठन, तकनीक, पूंजी और बाजार से जुड़ जाती है।

उदाहरण के लिए, अनाज को सीधे बोरी में बेचने के बजाय सफाई, ग्रेडिंग और पैकिंग के बाद स्थानीय ब्रांड के रूप में बेचा जाए, तो ग्राहक को भरोसा मिलता है और उत्पादक को बेहतर मूल्य की संभावना बनती है। फल, सब्जी व मसालों में भी प्राथमिक प्रसंस्करण और स्थानीय बाजार से सीधा जुड़ाव महत्वपूर्ण हो सकता है।

पशुधन : परिवार की अर्थव्यवस्था का आधार – आदिवासी आजीविका में पशुधन का महत्व खेती से कम नहीं है। गाय, बैल, बकरी, भेड़ और मुर्गी केवल आर्थिक संपत्ति नहीं, बल्कि रोजमर्रा की जरूरतों, खेती और खाद्य सुरक्षा से जुड़े हैं। पशुधन की मूल्य श्रृंखला पशु के चयन और पालन से शुरू होती है, फिर चारा, पानी, स्वास्थ्य, टीकाकरण, प्रजनन, देखभाल और बाजार तक पहुंच की कड़ियां आती हैं। अच्छी नस्ल का पशु हो, पर पोषण न मिले, बीमारी का समय पर इलाज न हो या बाजार की जानकारी न हो, तो लाभ सीमित रहता है। पशु स्वास्थ्य, पोषण और प्रबंधन में सुधार तथा उत्पादों को बेहतर बाजार से जोड़ने पर पशुधन अधिक मजबूत आजीविका साधन बनता है। इसमें पशु सखी जैसी स्थानीय महिला कार्यकर्ताओं की भूमिका महत्वपूर्ण है। जो महिला पशु स्वास्थ्य की प्राथमिक जानकारी रखती है, टीकाकरण और उपचार की सलाह परिवारों तक पहुंचाती है, उससे पशुओं की उत्पादकता और परिवार की आय दोनों बढ़ते हैं। साथ ही दूध, गोबर, जैविक खाद, बछड़े, स्थानीय नस्लों का संरक्षण और पशुधन सेवाएं भी इस श्रृंखला का हिस्सा हैं। पशुधन को केवल बेचने योग्य संपत्ति नहीं, परिवार की समग्र आजीविका का हिस्सा समझना जरूरी है।

जंगल और वन उपज : प्रकृति से आजीविका तक – जंगल से आदिवासी समाज का रिश्ता बहुत पुराना है। जंगल भोजन, औषधि, चारा और ईंधन देता है और कई परिवारों के लिए नकद आय का साधन भी है। महुआ, तेंदूपत्ता, गोंद, फल, बीज और जड़ी–बूटियां जैसी लघु वनोपज आजीविका में बड़ी भूमिका निभाती हैं। कौन–सी उपज कब लेनी है, किसे छोड़ना है, कैसे सुखाना और सुरक्षित रखना है, यह पारंपरिक ज्ञान स्वयं एक सामाजिक संपदा है।

फिर भी सबसे बड़ी चुनौती यह है कि संग्राहक अक्सर श्रृंखला की शुरुआत में ही उपज बेच देता है, और वही उपज कई चरणों से गुजरकर ऊंचे दाम पर बाजार पहुंचती है। यदि गांव स्तर पर संग्रहण, सफाई, छंटाई, सुखाने, ग्रेडिंग और भंडारण की व्यवस्था मजबूत हो और कुछ उत्पादों का प्रसंस्करण स्थानीय स्तर पर हो, तो मूल्य का हिस्सा गांव में रुक सकता है। वन उपज को केवल कच्चा माल मानने के बजाय समुदाय के ज्ञान और कौशल से मूल्यवर्धित उत्पादों में बदला जाए, तो जंगल अधिक मजबूत आधार बन सकता है। साथ ही उपज लेने की प्रक्रिया प्रकृति के पुनर्जीवन और संरक्षण के साथ चलनी चाहिए। जंगल रहेगा, तभी आने वाली पीढ़ियों की आजीविका सुरक्षित रहेगी।

महिलाएं : मूल्य श्रृंखला की महत्वपूर्ण कड़ी – महिलाएं इस श्रृंखला की सबसे महत्वपूर्ण, पर अक्सर कम दिखाई देने वाली कड़ी हैं। वे खेत में काम करती हैं, पशुओं की देखभाल करती हैं, जंगल से उपज लाती हैं, बीज सुरक्षित रखती हैं, भोजन बनाती हैं और परिवार संभालती हैं। उत्पाद तैयार करने में सबसे अधिक श्रम भी अक्सर वही करती हैं, फिर भी उनके श्रम का आर्थिक मूल्य दिखाई नहीं देता।

महिला जब महुआ साफ करती है, अनाज छांटती है, मसाला पीसती है या कोई खाद्य उत्पाद बनाती है, तो वह केवल घरेलू काम नहीं करती, मूल्य श्रृंखला की एक कड़ी मजबूत करती है। यदि महिला समूह केवल उत्पाद बनाता है और व्यापारी उसे आगे बेचता है, तो उन्हें केवल उत्पादन का मूल्य मिलता है। लेकिन यदि समूह गुणवत्ता, पैकिंग, ब्रांडिंग, बिक्री और ग्राहक से सीधे जुड़ना सीखे, तो कई कड़ियां उसके हाथ में आ सकती हैं।

यह महिला समूहों और महिला–नेतृत्व वाले उद्यमों के लिए बड़ा अवसर है, पर केवल प्रशिक्षण पर्याप्त नहीं। गुणवत्ता, नियमित उत्पादन, पैकेजिंग, लागत की गणना, बाजार की मांग, बिक्री व्यवस्था और वित्तीय प्रबंधन पर लगातार काम करना होगा।

स्थानीय हुनर और पारंपरिक कौशल से उद्यमिता तक – बांस, लकड़ी, मिट्टी, कपड़े, सजावटी सामग्री और पारंपरिक कला से जुड़ी वस्तुएं केवल सांस्कृतिक पहचान नहीं, आर्थिक संभावना भी हैं। आज उपभोक्ता वस्तु के साथ कहानी, पहचान और स्थानीयता भी खरीदता है। किसी गांव की कहानी, महिला समूह की मेहनत या पारंपरिक कला की पहचान वाला उत्पाद अलग जगह बना सकता है।

पर यहां भी पूरी श्रृंखला की समझ जरूरी है। उत्पाद बनाना पहला कदम है। डिजाइन, गुणवत्ता, पैकेजिंग, कीमत, ग्राहक तक पहुंच, बिक्री और दोबारा खरीद भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं। सबसे बड़ी सावधानी यह हो कि बाजार की मांग के नाम पर मूल पहचान खत्म न हो। आधुनिक डिजाइन अपनाया जा सकता है, पर स्थानीय कला की आत्मा बची रहनी चाहिए।

स्थानीय बाजार : स्वावलंबन की पहली सीढ़ी – सबसे पहला बाजार गांव और आसपास का क्षेत्र है। यदि रोजमर्रा की जरूरतों का कुछ हिस्सा स्थानीय उत्पादकों से पूरा हो, तो पैसा स्थानीय अर्थव्यवस्था में घूमता रहता है। हाट और साप्ताहिक बाजार आदिवासी अर्थव्यवस्था का अहम हिस्सा हैं। यहां लोग मिलते हैं, जानकारी साझा करते हैं, रिश्ते मजबूत होते हैं और मांग समझ में आती है। यदि उत्पादकों को मात्रा, गुणवत्ता और कीमत की जानकारी हो, वे सामूहिक रूप से बेच सकें और उपभोक्ता तक सीधे पहुंचें, तो बिचौलियों पर निर्भरता कम हो सकती है। डिजिटल माध्यमों ने नए रास्ते खोले हैं, लेकिन केवल मोबाइल पर फोटो डालना काफी नहीं है। नियमित गुणवत्ता, पैकिंग, डिलीवरी, भुगतान, ग्राहक सेवा और भरोसा जरूरी है। तकनीक उपयोगी साधन है, पर समुदाय की संगठनात्मक क्षमता का विकल्प नहीं।

मूल्य कहां बनता है और उसका लाभ किसे मिलता है?

किसान जब उपज सीधे बेचता है, तो उसे कच्चे उत्पाद का मूल्य मिलता है। वही उत्पाद साफ होकर, छंटकर, पैक होकर, ब्रांड बनकर ग्राहक के घर पहुंचता है, तो कीमत बढ़ती जाती है। सवाल है कि इसमें उत्पादक का हिस्सा कितना है? वन उपज संग्राहक तुरंत पैसे की जरूरत में उसी दिन उपज बेच देता है, जबकि आगे हर चरण में कीमत बढ़ती है और उसे अंतिम कीमत का छोटा हिस्सा ही मिलता है। इसलिए सवाल केवल यह नहीं कि **''हम क्या पैदा करें?''** बल्कि यह भी कि हम इसे किस रूप में, किसे, कब और किस कीमत पर बेचें, क्या हम सफाई, ग्रेडिंग या प्रसंस्करण कर सकते हैं, और क्या सामूहिक बिक्री से बेहतर मूल्य मिल सकता है। जब समुदाय इन सवालों पर सोचता है, तभी आजीविका उत्पादन से आगे बढ़कर उद्यम और मूल्य संवर्धन की ओर जाती है।

सामूहिकता से मजबूत होती श्रृंखला – छोटे उत्पादक के लिए बाजार की हर कड़ी अकेले संभालना कठिन है। उत्पादन कम होता है, परिवहन महंगा पड़ता है और बाजार की जानकारी सीमित रहती है। लेकिन कई परिवार मिलकर काम करें तो सामूहिक खरीद से लागत घटती है, सामूहिक संग्रहण से मात्रा बढ़ती है, सामूहिक प्रसंस्करण से गुणवत्ता सुधरती है और सामूहिक पैकेजिंग व बिक्री से बाजार तक पहुंच आसान होती है। किसान समूह, महिला समूह, उत्पादक समूह और स्थानीय संगठन इसमें अहम भूमिका निभा सकते हैं। पर सामूहिकता केवल समूह बना देने से नहीं आती। पारदर्शिता, जिम्मेदारी, हिसाब–किताब, गुणवत्ता और बाजार की समझ जरूरी है। जो समूह केवल योजना या सहायता पाने तक सीमित रहता है, वह बाजार में टिक नहीं पाता। सच्ची सामूहिकता तब है जब उत्पादक कह सके कि ''हम केवल उत्पाद बनाने वाले नहीं, अपने उत्पाद के मूल्य और बाजार के निर्णय में भी भागीदार हैं।''

परंपरा और बाजार के बीच संतुलन – आदिवासी आजीविका की सबसे बड़ी विशेषता प्रकृति और संस्कृति से जुड़ाव है, इसलिए बाजार से जुड़ने का अर्थ पारंपरिक जीवन–पद्धति को पूरी तरह बदल देना नहीं होना चाहिए। यदि मांग के कारण स्थानीय बीज छूट जाए, वन उपज का अत्यधिक दोहन हो या स्थानीय खाद्य संस्कृति बाहरी मांग के पीछे बदल जाए, तो तत्काल आय बढ़ने पर भी समुदाय लंबे समय में कमजोर हो सकता है। विकास ऐसा हो जिसमें आय, प्रकृति, पोषण, संस्कृति और स्वावलंबन के बीच संतुलन बना रहे। जल, जंगल, जमीन, बीज और पशुधन केवल आर्थिक संसाधन नहीं, समुदाय की जीवन व्यवस्था का हिस्सा हैं।

युवाओं के लिए नई संभावनाएं – युवा मोबाइल और डिजिटल माध्यमों की समझ के साथ बाजार की जानकारी जुटा सकते हैं, उत्पादों की फोटो और विवरण तैयार कर सकते हैं, ऑनलाइन ग्राहकों से जुड़ सकते हैं और गांव के उत्पाद को व्यापक बाजार तक पहुंचा सकते हैं। लेकिन उनकी भूमिका डिजिटल बिक्री तक सीमित न हो। कृषि और पशुधन सेवा, खाद्य प्रसंस्करण, पैकेजिंग, परिवहन, मरम्मत, कृषि उपकरण, बीज संरक्षण, वन उपज प्रसंस्करण और स्थानीय पर्यटन में भी रोजगार और उद्यम की संभावनाएं हैं। यदि युवा गांव के संसाधनों को समस्या नहीं, अवसर के रूप में देखें, तो पलायन का दबाव घट सकता है।

आजीविका की असली ताकत विविधता में – आदिवासी परिवारों ने सदियों से एक ही आय के भरोसे जीवन नहीं चलाया। खेत, जंगल, पशु, मजदूरी, स्थानीय व्यापार व सामाजिक सहयोग का मिश्रण उनका आधार रहा है। बाजार व मौसम बदल रहे हैं, जरूरतें भी बदल रही हैं, ऐसे में यह विविधता और जरूरी है। केवल एक फसल पर निर्भर परिवार पर मौसम का जोखिम अधिक होता है, जबकि पशुधन, बाड़ी, खाद्य उत्पाद या वन उपज होने पर जोखिम बंट जाता है।

पारंपरिक व्यवस्था की बड़ी सीख यही है कि एक स्रोत पर निर्भर रहने के बजाय अनेक स्रोतों को जोड़ा जाए। साथ ही बाजार की समझ भी चाहिएरू उत्पादन कितना हो, लागत कितनी है, स्थानीय मांग क्या है, उत्पाद किस रूप में बिके और किस चरण पर मूल्य बढ़ाया जा सकता है।

ऊर्जा/स्वच्छ रसोई : जंगल से दीया, चूल्हे तक उजाला–स्वच्छ रसोई से जगमगाती दीपावली

त्यौहार की रसोई, महिला की मेहनत – दीपावली की तैयारी में सबसे ज्यादा समय रसोई में लगता है : मीठे–नमकीन पकवान, पर्व–भोज और मेहमानों का स्वागत। बाँसवाड़ा, डूँगरपुर, उदयपुर, प्रतापगढ़ से लेकर दाहोद, झाबुआ और रतलाम तक के आदिवासी अंचल में इस रसोई की आग अक्सर जंगल की लकड़ी से जलती है। उसे लाने, सुखाने और जलाने का पूरा बोझ महिलाओं पर होता है। पिछले माह हमने **'धुआँ रहित भोर'** की बात की थी। इस माह दीपावली के बहाने उसी सवाल को आगे बढ़ाते हैं – जिस जंगल से दीया और पत्तल मिलता है, उसी जंगल पर रसोई का बोझ कम कैसे हो, और महिला के घर में धुएँ की जगह उजाला कैसे आए?

पारंपरिक चूल्हे की छिपी कीमत स्वास्थ्य – खुले चूल्हे का धुआँ आँखों में जलन, खाँसी और साँस की तकलीफ बढ़ा सकता है। छोटे बच्चे और गर्भवती महिलाएँ अधिक जोखिम में रहते हैं।

समय और मेहनत – लकड़ी बीनने में कई घंटे लगते हैं, जो खेती, पशुपालन, पढ़ाई या आमदनी के काम में लग सकते थे।

जंगल पर दबाव – लगातार लकड़ी कटने से जंगल घटता है, और दीया–पत्तल–बाँस जैसी वनोपज भी दूर होती जाती है।

सुरक्षा – जंगल में दूर जाना जोखिम भरा है, और घर में आग से जलने का खतरा भी रहता है।

आसानी से अपनाए जा सकने वाले तीन समाधान हर परिवार की स्थिति अलग होती है, इसलिए एक ही उपाय सब पर नहीं बैठता। आसानी, कम लागत और टिकाऊपन के क्रम से ये तीन रास्ते सबसे व्यावहारिक हैं।

1. उन्नत (धुआँ–कम) चूल्हा : हर परिवार का पहला कदम

- लागत बहुत कम है। गाँव की मिट्टी, ईंट या स्थानीय मिस्त्री से बनवाया जा सकता है।
- ईंधन वही रहता है जो परिवार पहले से इस्तेमाल करता है, इसलिए आदत बदलने की जरूरत नहीं। न बिजली चाहिए, न बार–बार भरवाने का।

ध्यान रखें – चिमनी या हवादार जगह हो, लकड़ी सूखी हो और डिजाइन सही हो। यह धुआँ कम करता है, पूरी तरह खत्म नहीं।

2. गोबर गैस (बायोगैस) – जहाँ 2–3 पशु हों

- गोबर से रसोई गैस मिलती है और बची स्लरी खेत की खाद बनती है, यानी दोहरा लाभ।
- रोज की लकड़ी बीनने की मेहनत लगभग खत्म हो जाती है।
- पानी और रोज पर्याप्त गोबर चाहिए। जिनके पास कम पशु हों, वे 2–3 पड़ोसी परिवार मिलकर एक संयंत्र चला सकते हैं।

3. एलपीजी. उन्नत चूल्हा : मिश्रित उपयोग

- कई परिवारों के पास कनेक्शन है, पर बार–बार भरवाना महँगा पड़ने से सिलेंडर पड़ा रहता है।
- चाय, दूध, जल्दी बनने वाली चीजें और मेहमानों का खाना गैस पर।
- बार–बार भरवाने के लिए फसल के बाद कुछ राशि अलग रखें या समूह में बचत करें।

दीपावली की रसोई के लिए सरल सुझाव –

1. एक साथ पकाएँ : कई पकवान एक ही बार चूल्हा जलाकर बनाएँ, ताकि ईंधन बचे।

2. ढककर पकाएँ – ढक्कन लगाने और दाल पहले भिगोने से ईंधन और समय दोनों बचते हैं।

3. सूखी लकड़ी – गीली लकड़ी ज्यादा धुआँ देती है। लकड़ी छाँव में सुखाकर रखें।

4. हवादार रसोई – खिड़की, रोशनदान या चिमनी से धुआँ बाहर निकले।

5. बच्चों को दूर रखें – चूल्हे के पास खेलने न दें।

6. साझा रसोई – पर्व–भोज या बिक्री के लिए बड़े स्तर पर मिठाई–नमकीन बनाने हेतु समूह की साझा स्वच्छ रसोई उपयोगी है।

रसोई से आजीविका तक – स्वच्छ रसोई केवल स्वास्थ्य का नहीं, कमाई का भी रास्ता है। बचा हुआ समय दीये, पत्तल, टोकरी और सजावट के उत्पाद बनाने में लग सकता है। महिला समूह दीपावली के लिए मिठाई, नमकीन और पर्व–भोज की सामग्री बनाकर बेच सकते हैं, और साझा स्वच्छ चूल्हे से लागत घटती है। बायोगैस की स्लरी खाद अपने खेत में लगाने से या बेचने से अतिरिक्त लाभ मिलता है। ब्रिकेट बनाने जैसे छोटे उद्यम से सीधी आमदनी हो सकती है।

जंगल बचे तो दीया जले – ईंधन के लिए लकड़ी का दबाव घटते ही जंगल को पनपने का मौका मिलता है।

- लकड़ी सूखी और गिरी हुई ही लें, हरे पेड़ न काटें।
- गाँव और ग्राम सभा के साथ मिलकर जंगल की सुरक्षा और ईंधन–लकड़ी के उपयोग के नियम तय करें।

महिला समूहों की भूमिका – महिला समूह मिलकर उन्नत चूल्हे या बायोगैस की साझा खरीद या निर्माण कर सकते हैं।

- समूह की महिलाएँ स्वच्छ ऊर्जा सखी बनकर दूसरे परिवारों को जानकारी और प्रशिक्षण दे सकती हैं।
- योजनाओं, ऋण और प्रशिक्षण के लिए आजीविका मिशन, जनजातीय विकास विभाग, कृषि विज्ञान केंद्र, अक्षय ऊर्जा से जुड़े कार्यालय और बैंकों से संपर्क करें।

दीया सिर्फ आँगन में नहीं, रसोई में भी जलना चाहिए, और वह धुएँ का नहीं, स्वच्छ ऊर्जा का हो। सबसे पहले उन्नत चूल्हा, जहाँ पशु हों वहाँ गोबर गैस, और गैस हो तो उसे उन्नत चूल्हे के साथ मिलाकर चलाएँ। यही छोटे, सस्ते और टिकाऊ कदम उसका समय बचाते हैं और जंगल को सुरक्षित रखते हैं। जंगल से दीया निकले और रसोई में उजाला उतरे, यही सच्ची दीपावली है।

जंगल के आधार स्तंभ और आदिवासी जीवन के साथ सांस्कृतिक जुड़ाव – वृक्ष

राजस्थान के डूंगरपुर, बाँसवाड़ा और प्रतापगढ़ से लेकर गुजरात के दाहोद तथा मध्यप्रदेश के झाबुआ और रतलाम तक एक बड़ा आदिवासी क्षेत्र फैला हुआ है। यहाँ पहाड़, जंगल और माही, नर्मदा, सोम तथा जाखम जैसी नदियाँ हैं। यहाँ रहने वाले आदिवासी समुदायों का जीवन सदियों से जंगल, जल, जमीन और प्रकृति से जुड़ा रहा है।

आदिवासी समुदायों के लिए जंगल केवल पेड़ों का समूह नहीं, बल्कि उनके जीवन, संस्कृति और आजीविका का आधार है। जंगल से उन्हें भोजन, चारा, औषधियाँ और कई जरूरी चीजें मिलती हैं। जंगल में कुछ पेड़ ऐसे होते हैं, जिन पर अनेक पक्षियों, कीटों, जानवरों और दूसरे पौधों का जीवन निर्भर करता है। ये पेड़ उन्हें भोजन और रहने की जगह देते हैं। ऐसे पेड़ों को हम "जंगल के आधार स्तंभ" कह सकते हैं। यदि ये पेड़ नष्ट हो जाएँ, तो जंगल में रहने वाले अनेक जीवों और दूसरे पौधों पर भी असर पड़ता है। भील और गरासिया समुदायों के बुजुर्ग अपने अनुभव और पीढ़ियों से मिले पारंपरिक ज्ञान के आधार पर पेड़ों और जंगल के महत्त्व को समझते रहे हैं। कई पेड़ों को देवता के समान मानना, उनसे जुड़ी कहानियाँ, त्यौहार और उनकी रक्षा करने की परंपराएँ इसी ज्ञान और संस्कृति का हिस्सा हैं। इन परंपराओं ने लोगों को प्रकृति के प्रति सम्मान और उसकी रक्षा करने की सीख दी है।

वागधारा के स्वराज दृष्टिकोण में आदिवासी समुदायों के इस पारंपरिक ज्ञान और सांस्कृतिक जुड़ाव का विशेष महत्त्व है। जंगलों की रक्षा केवल पेड़ लगाने से नहीं, बल्कि समुदायों के अनुभव, उनकी परंपराओं और सामूहिक प्रयासों को मजबूत बनाने से भी होती है। जब आदिवासी समुदाय अपने जंगल, जल और जमीन की रक्षा के लिए मिलकर निर्णय लेते हैं और अपनी जिम्मेदारी निभाते हैं, तो प्रकृति के साथ–साथ उनकी संस्कृति और आने वाली पीढ़ियों का भविष्य भी सुरक्षित होता है। यही सामुदायिक स्वराज की भावना है।

महुआ – भील–गरासिया जीवन का प्राण दक्षिणी राजस्थान, दाहोद और झाबुआ क्षेत्र में महुआ को कल्पवृक्ष जैसा सम्मान मिलता है। मार्च–अप्रैल में महिलाएँ और बच्चे भोर में फूल बीनते, सुखाते और सँभालते हैं। सूखे महुआ से रोटी, लड्डू और दलिया बनता है, जो अकाल और कमी के दिनों में अन्न का सहारा रहा है। बीजों से तेल निकलता है, जिसका उपयोग खाने, जलाने और औषधि में होता है। महुआ का पारंपरिक पेय विवाह, जन्म, मृत्यु और देव–पूजन में इस्तेमाल होता है। इसकी बिक्री से परिवारों को नकद आय भी मिलती है। महुआ जंगल के आधार स्तंभ वृक्ष है, क्योंकि इसके फूल उस समय आते हैं जब जंगल में दूसरा भोजन कम होता है। भालू, सियार, लोमड़ी, नीलगाय, हिरण, बंदर, लंगूर, चमगादड़ और अनेक पक्षी इस पर निर्भर रहते हैं। इसके कटने से भूखे जीव खेतों की ओर आते हैं और मानव–वन्यजीव संघर्ष बढ़ता है।

खेजड़ी – मरुस्थल के पारिस्थितिक तंत्र की धुरी खेजड़ी की गहरी जड़ें नाइट्रोजन स्थिरीकरण करके मिट्टी को उपजाऊ बनाती हैं। इसकी छाया में बाजरा और अन्य फसलें बेहतर पनपती हैं। पत्तियाँ पशुओं का चारा, फलियाँ (सांगरी) प्रसिद्ध सब्जी और सूखी टहनियाँ ईंधन देती हैं। पक्षियों, गिलहरियों और रेगिस्तानी जीवों को इससे छाया और आश्रय मिलता है। इसी महत्व के कारण इसे राजस्थान का राज्य वृक्ष घोषित किया गया।

सागवान और साल– जंगलों की रीढ़ मध्यप्रदेश, राजस्थान और गुजरात के आदिवासी समाज साल को पवित्र मानते हैं और इसके जंगलों में देवताओं का वास मानते हैं। साल का घना वितान छाया देता है, मिट्टी की नमी बचाता है और जड़ें कटाव रोकती हैं। इसके पत्तों से दोना–पत्तल बनते हैं तथा बीज और छाल भी उपयोगी हैं।

झाबुआ, अलीराजपुर, बड़वानी और गुजरात के डांग–छोटा उदयपुर क्षेत्र में सागौन और मिश्रित पर्णपाती वन हैं। ये वन वर्षा–जल रोककर नदियों और झरनों को जीवित रखते हैं। इनके कटने से नाले सूखते हैं और पहाड़ियाँ नंगी हो जाती हैं।

बरगद, पीपल, गूलर और उम्बर – जीवों के आश्रयदाता अंजीर कुल के वृक्ष दुनिया भर में पाये जाते हैं। इनके फल अलग–अलग समय पर पकते हैं, इसलिए साल भर पक्षियों, बंदरों, गिलहरियों, चमगादड़ों और छोटे जीवों को भोजन मिलता रहता है। ये जीव बीज फैलाकर नया जंगल उगाते हैं।

भील और गरासिया गाँवों में बरगद की छाँव सामुदायिक मंच है, जहाँ पंचायत बैठती है, विवाद सुलझते हैं और त्यौहारों की तैयारी होती है। भगोरिया मेलों और सामाजिक आयोजनों में भी बड़े वृक्षों की छाया का महत्व रहा है। गूलर (उम्बर) को अनेक जगह शुभ और पूज्य माना जाता है। हमारे पूर्वजों ने इन वृक्षों को पूज्य मानकर उनके संरक्षण का रास्ता बनाया।

तेंदू और जंगली फल – सबका साझा भोजन तेंदू पत्ता संग्रहण आज भी हजारों परिवारों की मौसमी आजीविका है। इसके मीठे फल भालू, बंदर और पक्षियों का प्रिय भोजन हैं। आँवला, चार (चिरौंजी), जामुन, बेर, सीताफल और टिमरू जैसे वृक्ष अलग–अलग मौसम में मनुष्यों और जीवों को पोषण देते हैं। इनके फलने के अलग–अलग समय से साल भर जंगल का भोजन–चक्र चलता रहता है। बाँस, आम और जामुन जीवन के उपयोगी साथी बाँस से घर, टोकरियाँ, कृषि औजार और वाद्य बनते हैं। इसके नए अंकुर खाए जाते हैं और जड़ें मिट्टी को बाँधती हैं। देशी आम और जामुन मधुमक्खियों को पराग तथा पक्षियों को घोंसले बनाने की जगह देते हैं। जामुन की छाँव और आम की अमराई गाँव की स्मृतियों और लोकगीतों का हिस्सा हैं।

पवित्र उपवन और परंपराओं में छिपा संरक्षण – ''ओरण और देवबनी'' राजस्थान में ओरण देवताओं या लोकदेवताओं को समर्पित पवित्र वन–क्षेत्र हैं। यहाँ पेड़ काटना, शिकार करना और सूखी लकड़ी उठाना भी वर्जित माना जाता है। दक्षिणी राजस्थान में ऐसे उपवन देवबनी या देववन कहलाते हैं। ''देव–थान और पूर्वज–स्थल'' भील और भिलाला गाँवों में बड़े वृक्षों के नीचे देव–स्थान होते हैं। पीढ़ियों से सुरक्षित ये वृक्ष छोटे बीज–बैंक की तरह काम करते हैं।

''मौसमी वर्जनाएँ'' फल पकने से पहले न तोड़ना, जीवों के लिए कुछ फल छोड़ना और कुछ पेड़ों को पीढ़ियों तक न छूना। ''गीत, कथाएँ और पर्व'' लोकगीतों और पर्वों में प्रकृति, वृक्षों और ऋतुओं का उल्लेख नई पीढ़ी को उनका महत्व सिखाता है। ''साझा संपत्ति की सोच'' चारागाह, जल–स्रोत और जंगल पूरे समुदाय के माने जाते थे, इसलिए उनका अति–दोहन नहीं होता था। ये परंपराएँ आधुनिक सामुदायिक संरक्षण की पुरानी और सफल मिसाल हैं।

जब जंगल के आधार स्तंभ वृक्ष कटता है – गाँव का पुराना महुआ, बरगद या गूलर कटने पर भोजन का बड़ा स्रोत समाप्त हो जाता है। पक्षी और अन्य जीव बिखरते हैं या खेतों में घुसते हैं। परागण करने वाले कीट घटने से आसपास के पेड़ों में फल कम लगते हैं। छाया घटने से मिट्टी सूखती है, नाले–झरने कमजोर होते हैं और पानी का संकट बढ़ता है। महुआ और वनोपज से आय तथा पशुओं का चारा घटता है, पलायन बढ़ता है और पारंपरिक ज्ञान, पर्व व कथाएँ धीरे–धीरे लुप्त होने लगती हैं।

हम क्या कर सकते हैं?

1. ''जंगल के आधार स्तंभ वृक्षों की पहचान करें '' बुजुर्गों के साथ बैठकर उन वृक्षों की सूची बनाएँ जो जीवों और परिवारों के सबसे अधिक काम आते हैं।

2. ''ओरण, देवबनी और पवित्र स्थलों को बचाएँ'' इन्हें ग्राम सभा के अभिलेखों और सामुदायिक संरक्षण में दर्ज कराने का प्रयास करें।

3. ''ग्राम सभा और कानूनी अधिकारों का उपयोग करें'' वन अधिकार अधिनियम, 2006 के तहत सामुदायिक वन संसाधन अधिकार तथा पाँचवीं अनुसूची और पेसा कानून वाले क्षेत्रों में ग्राम सभा की भूमिका महत्वपूर्ण है।

4. ''टिकाऊ संग्रहण अपनाएँ'' महुआ, तेंदू और अन्य वनोपज इस तरह लें कि पेड़ों और जीवों के लिए भी पर्याप्त बचे।

5. ''देशज प्रजातियाँ लगाएँ'' महुआ, खेजड़ी, बरगद, पीपल, जामुन, आम और बाँस जैसे स्थानीय वृक्षों को प्राथमिकता दें।

6. ''बच्चों को जोड़ें'' उन्हें जंगल ले जाएँ, वृक्षों की कथाएँ सुनाएँ और पौधे लगाकर उनकी देखभाल करवाएँ।

7. ''जल–संरक्षण से जोड़ें'' तालाब, ढलानों पर मेड़बंदी और जल–स्रोतों की रक्षा करें, क्योंकि जंगल और पानी एक–दूसरे के पूरक हैं।

अरावली की चट्टानों से सतपुड़ा की घाटियों तक भील, गरासिया और मीणा समुदायों ने यह सत्य जिया है कि मनुष्य जंगल का मालिक नहीं, उसका एक अंग है। जंगल के आधार स्तंभ वृक्ष की वैज्ञानिक अवधारणा वही बात कहती है जो हमारे पुरखे गीतों, पर्वों और देव–स्थानों के माध्यम से कहते आए हैं – जंगल एक परिवार है और कुछ वृक्ष उस परिवार के बुजुर्ग हैं। जब हम महुआ बीनते हैं, खेजड़ी की छाँव में बैठते हैं या बरगद के नीचे पंचायत करते हैं, तब हम पारिस्थितिकी का पुराना पाठ दोहराते हैं। जरूरत है कि इन वृक्षों को केवल पूजा तक सीमित न रखें, बल्कि अपने कर्म से भी बचाएँ। क्योंकि जब तक ये बुजुर्ग वृक्ष खड़े हैं, जंगल जीवित है और जब तक जंगल जीवित है, हमारी संस्कृति, पहचान और आने वाली पीढ़ियों का भविष्य सुरक्षित है।

उन्नत उकेड़ा से बदली खेती की तस्वीर : महिला किसान रामली देवी खराड़ी की प्रेरक कहानी

राजस्थान के बांसवाड़ा जिले से लगभग 50 किलोमीटर दूर घाटोल ब्लॉक की ग्राम पंचायत डिंडोरिया की महिला किसान रामली देवी खराड़ी की कहानी संघर्ष, सीख और बदलाव की एक प्रेरणादायक मिसाल है। सीमित संसाधनों, पारंपरिक खेती की चुनौतियों और बढ़ती कृषि लागत के बीच उन्होंने कभी हार नहीं मानी। खेती को केवल आजीविका का साधन मानने के बजाय उन्होंने इसे सीखने, प्रयोग करने और आत्मनिर्भर बनने का माध्यम बनाया। सही मार्गदर्शन, नई तकनीकों को अपनाने की इच्छा और अपनी मेहनत के बल पर उन्होंने न केवल अपने खेत की उर्वरता में सुधार किया, बल्कि रबी फसलों के विविधीकरण के माध्यम से खाद्यान्न की उपलब्धता बढ़ाने की दिशा में भी महत्वपूर्ण कदम उठाया। आज रामली देवी अपने गाँव की अन्य महिला किसानों के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं। उनकी सफलता यह संदेश देती है कि स्थानीय संसाधनों का वैज्ञानिक और जैविक तरीके से उपयोग करके खेती को कम लागत वाली, टिकाऊ और अधिक लाभकारी बनाया जा सकता है।

संघर्ष से शुरुआत –

रामली देवी अपने परिवार के साथ ग्राम डिंडोरिया में रहती हैं। उनके पति मनियां खराड़ी साक्षर हैं। परिवार में उनकी बेटी सपना खराड़ी हैं, जिन्होंने ठैज्ब तक शिक्षा प्राप्त की है, तथा बेटा रतनलाल खराड़ी, जो वर्तमान में आठवीं कक्षा में अध्ययनरत है। परिवार की आजीविका का मुख्य आधार खेती और पशुपालन है।

कुछ वर्ष पहले तक रामली देवी पारंपरिक तरीके से खेती करती थीं। खेतों में गोबर का उकेड़ा डालने के बावजूद अपेक्षित लाभ नहीं मिल रहा था। खेती में यूरिया और डीएपी जैसी रासायनिक खादों का अधिक उपयोग करना पड़ता था, जिससे कृषि लागत लगातार बढ़ रही थी, जबकि उत्पादन में कोई विशेष बढ़ोतरी नहीं हो रही थी।

समय के साथ खेत की मिट्टी की उर्वरता प्रभावित होने लगी। मिट्टी कठोर होती जा रही थी और उसमें नमी अधिक समय तक नहीं टिकती थी। बैलों से गहरी जुताई करना भी कठिन हो रहा था। खरपतवार की समस्या के कारण फसलों की बढ़वार प्रभावित होती थी। बढ़ती लागत और मिट्टी की बिगड़ती स्थिति ने खेती को चुनौतीपूर्ण बना दिया था। ऐसे में रामली देवी को खेती की ऐसी पद्धति अपनाने की आवश्यकता महसूस हुई, जिससे मिट्टी की सेहत सुधरे, कृषि लागत कम हो और परिवार के लिए विभिन्न प्रकार के खाद्यान्न उपलब्ध हो सकें।

सीखने की शुरुआत और नई सोच –

इसी दौरान रामली देवी वाग्धारा संस्था के सक्षम समूह से जुड़ीं। उन्होंने नियमित रूप से सक्षम समूह की बैठकों और फार्मर फील्ड स्कूल के सत्रों में भाग लेना शुरू किया। इन बैठकों के माध्यम से उन्हें मिट्टी की सेहत, जैविक खेती, स्थानीय संसाधनों के उपयोग और कम लागत वाली टिकाऊ कृषि पद्धतियों की जानकारी मिली।

वाग्धारा संस्था द्वारा संचालित श्उन्नत उकेड़ा अभियानश् ने उनकी सोच में महत्वपूर्ण बदलाव लाया। उन्होंने अपने खेत के एक कोने में उन्नत उकेड़ा तैयार करने के लिए गड्ढा बनाया। संस्था द्वारा बताए गए तरीके के अनुसार उसमें गोबर भरा, छच्ज्ञ लिक्विड और रॉक फॉस्फेट पाउडर मिलाया तथा समय–समय पर पानी देकर उसकी देखभाल की। लगभग तीन माह की नियमित प्रक्रिया के बाद उच्च गुणवत्ता वाली उन्नत उकेड़ा खाद तैयार हुई।

इसके साथ ही उन्होंने दसपर्णी, जीवामृत और कण्डा पानी जैसे स्थानीय जैविक घोलों का उपयोग भी शुरू किया। धीरे–धीरे उनका विश्वास बढ़ने लगा कि खेत में उपलब्ध संसाधनों का उचित उपयोग करके मिट्टी की उर्वरता में सुधार किया जा सकता है और रासायनिक खादों पर निर्भरता कम की जा सकती है। उन्होंने बैठकों में सीखी गई जानकारी अन्य महिला किसानों के साथ भी साझा करनी शुरू की, जिससे गाँव में जैविक खेती के प्रति जागरूकता बढ़ने लगी।

रबी फसलों के विविधीकरण से बढ़ी खाद्यान्न सुरक्षा –

रामली देवी ने खेती में सुधार के लिए केवल खाद के उपयोग तक अपने प्रयासों को सीमित नहीं रखा, बल्कि रबी मौसम में विभिन्न फसलों की खेती को भी बढ़ावा दिया। उन्होंने चना, गेहूँ, जौ, सरसों और मक्का जैसी फसलों को अपनी खेती का हिस्सा बनाकर फसल विविधीकरण की दिशा में कदम बढ़ाया।

रबी मौसम में उन्नत उकेड़ा खाद का उपयोग करते हुए उन्होंने गेहूँ सहित अन्य फसलों की खेती में मिट्टी की उर्वरता सुधारने पर ध्यान दिया। विभिन्न फसलों को अपनाने से उनके खेत में एक ही फसल पर निर्भरता कम करने और परिवार के लिए अलग–अलग प्रकार के खाद्यान्न एवं कृषि उत्पाद उपलब्ध कराने की संभावनाएँ बढ़ीं।

चना जैसी दलहनी फसल को खेती में शामिल करना मिट्टी की सेहत के लिए भी उपयोगी है, क्योंकि दलहनी फसलें अपनी जड़ों में मौजूद सूक्ष्मजीवों की सहायता से वायुमंडलीय नाइट्रोजन के स्थिरीकरण में योगदान देती हैं। वहीं गेहूँ और जौ जैसी अनाज की फसलें परिवार की खाद्यान्न आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक होती हैं।

सरसों से तेल प्राप्त करने की संभावना बनती है, जबकि मक्का भी भोजन और पशु आहार के लिए उपयोगी है।

इस प्रकार रामली देवी ने फसल विविधीकरण के माध्यम से खेती को केवल उत्पादन तक सीमित न रखकर मिट्टी की उर्वरता, खाद्यान्न की विविधता और परिवार की आवश्यकताओं से जोड़ने का प्रयास किया। स्थानीय संसाधनों से तैयार उन्नत उकेड़ा खाद का उपयोग उनकी इस पहल का महत्वपूर्ण हिस्सा बना।

उन्नत उकेड़ा से खेती में सकारात्मक बदलाव –

रामली देवी ने बाजार से रासायनिक खाद खरीदने पर होने वाले खर्च को कम करने के उद्देश्य से अपने खेत में तैयार उन्नत उकेड़ा खाद का उपयोग किया। गेहूँ की बुवाई के समय उन्होंने बीज के साथ इस खाद का प्रयोग किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने गेहूँ और पोषणवाड़ी में भी इसका उपयोग किया।

उनके अनुभव के अनुसार, पहले 30 किलोग्राम गेहूँ के बीज की बुवाई से लगभग 300 किलोग्राम उत्पादन प्राप्त होता था, जबकि उन्नत उकेड़ा खाद के उपयोग के बाद उसी मात्रा के बीज से 600 किलोग्राम से अधिक गेहूँ का उत्पादन प्राप्त हुआ। इससे उन्हें बेहतर उत्पादन की उम्मीद मिली और खेती में स्थानीय स्तर पर तैयार खाद के महत्व का अनुभव हुआ।

पोषणवाड़ी में भी उन्हें सकारात्मक परिणाम देखने को मिले। लगभग 200 ग्राम मटर के बीज से करीब 5 किलोग्राम मटर का उत्पादन प्राप्त हुआ। इसके अलावा लगभग 20 किलोग्राम प्याज, 10 किलोग्राम लहसुन तथा पालक, मेथी और अन्य मौसमी सब्जियों की पैदावार भी हुई। इससे परिवार के भोजन में विविधता बढ़ाने और पोषण संबंधी जरूरतों को पूरा करने में मदद मिली।

देसी बीज संरक्षण और जैव विविधता को बढ़ावा –

रामली देवी अपने खेत में स्थानीय देसी बीजों के संरक्षण पर भी विशेष ध्यान देती हैं। वे कुरी, बटी, कांग, कोदरा, देसी मक्का, उड़द, राई, मूंग, सेवफली, ककड़ी, तुरई, लौकी, गिलकी और सवला जैसी पारंपरिक बीज स्वयं सुरक्षित रखती हैं।

देसी बीजों का संरक्षण उनकी खेती को स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल बनाए रखने और बाहरी कृषि आदानों पर निर्भरता कम करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है। विभिन्न प्रकार की फसलों को अपनाने से खेत में जैव विविधता को बढ़ावा मिलता है और परिवार को अलग–अलग खाद्य पदार्थ उपलब्ध कराने की संभावनाएँ भी मजबूत होती हैं।

खेत, पेड़–पौधों और पशुपालन में सुधार –

रामली देवी ने खेत की मेड़ों और खाली स्थानों पर आम, अमरूद, महुआ, सागवान तथा अन्य बहुउद्देशीय पौधे भी लगाए हैं। उन्नत उकेड़ा खाद के उपयोग के बाद इन पौधों की बढ़वार में भी सकारात्मक बदलाव देखने को मिला। पहले जो पौधे सूखने लगे थे, वे फिर से हरे–भरे होने लगे। आम के पेड़ों में इस वर्ष अच्छी पैदावार हुई और खेतों में उगी घास से पशुओं के लिए पर्याप्त चारा मिलने लगा।

वर्तमान में उनके पास 2 बैल, 3 गायें, 2 भैंसें और 7 बकरियाँ हैं। खेती और पशुपालन का यह समन्वय उनके परिवार की आजीविका को मजबूत आधार प्रदान करता है। पशुओं से प्राप्त गोबर का उपयोग उन्नत उकेड़ा खाद तैयार करने में भी किया जा सकता है, जिससे खेत और पशुपालन के बीच संसाधनों का बेहतर चक्र विकसित होता है।

निरंतर प्रयास से आत्मनिर्भरता की ओर –

रामली देवी का उत्साह यहीं नहीं रुका। उन्होंने इस वर्ष फिर से नया उन्नत उकेड़ा भरना शुरू कर दिया है। पिछले वर्ष तैयार खाद के दो कट्टे उन्होंने सुरक्षित रखे हैं, जिन्हें नए उकेड़ा में मिलाकर खाद की गुणवत्ता और उसके तैयार होने की प्रक्रिया को बेहतर बनाने की योजना बनाई है।

आज रामली देवी खराड़ी केवल एक महिला किसान नहीं, बल्कि जैविक खेती, देसी बीज संरक्षण, रबी फसलों के विविधीकरण और स्थानीय संसाधनों के बेहतर उपयोग की प्रेरणास्रोत बन चुकी हैं। उनके प्रयास बताते हैं कि खेती में सुधार के लिए केवल अधिक खाद या अधिक खर्च करना जरूरी नहीं है। मिट्टी की सेहत पर ध्यान देना, विभिन्न फसलों को अपनाना, स्थानीय बीजों को सुरक्षित रखना और परिवार की खाद्यान्न आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर खेती करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

रामली देवी की सफलता की कहानी यह संदेश देती है कि उन्नत उकेड़ा जैसी स्थानीय जैविक खादों के उपयोग, रबी फसलों के विविधीकरण और देसी बीजों के संरक्षण से किसान मिट्टी की उर्वरता सुधारने, खाद्यान्न की विविधता बढ़ाने और खेती को अधिक टिकाऊ बनाने की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं।

फूलों की खेती से आत्मनिर्भर बनी मीनाबेन : मेहनत और बदलाव की प्रेरक कहानी

फूलों की खेती से बदली मीनाबेन की तकदीर, आज फतेपुरा में बनीं "फूलों वाला परिवार" की पहचान'', आधा बीघा जमीन से सवा लाख रुपये की सालाना आमदनी, वाग्धारा के प्रोत्साहन ने दिखाई नई राह''

कहा जाता है कि हौसला हो तो छोटी–सी जमीन भी बड़ी उम्मीदों का बगीचा बन सकती है। दाहोद जिले की फतेपुरा तहसील के गाँव माधवा की मीनाबेन लक्ष्मणभाई पारगी ने इसे सच कर दिखाया है। सिर्फ 2 बीघा जमीन की मालिक मीनाबेन ने उसमें से आधा बीघा पर फूलों की खेती शुरू की। आज वही खेती उनके परिवार की मजबूत आमदनी का जरिया बन चुकी है।

छोटा परिवार, सीमित जमीन –

मीनाबेन के परिवार में कुल चार सदस्य हैं – वे स्वयं, उनके पति और दो बच्चे। परिवार के पास कुल 2 बीघा जमीन है। इतनी कम जमीन में परिवार का खर्च चलाना आसान नहीं था और आमदनी बढ़ाने के नए रास्ते की जरूरत थी।

सीमित संसाधनों के बावजूद मीनाबेन ने हिम्मत नहीं हारी। वे परिवार की आर्थिक स्थिति मजबूत करने के लिए खेती में नए अवसर तलाश रही थीं। उनके सामने चुनौती थी कि उपलब्ध जमीन का बेहतर उपयोग करके नियमित आमदनी कैसे बढ़ाई जाए। इसी तलाश ने उन्हें पारंपरिक खेती के साथ फूलों की खेती की ओर कदम बढ़ाने के लिए प्रेरित किया।

सक्षम समूह और वाग्धारा से मिला सहारा

मीनाबेन पिछले 5 वर्षों से वाग्धारा संस्था से जुड़ी हैं और सक्षम समूह की सदस्य हैं। वे समूह की मासिक बैठकों में नियमित रूप से भाग लेती रही हैं। इन्हीं बैठकों और संस्था के संपर्क के दौरान वागधरा के प्रतिनिधि ने उन्हें फूलों की खेती के लिए प्रोत्साहित किया। प्रतिनिधि ने उन्हें इस खेती से होने वाले लाभ के बारे में भी विस्तार से समझाया।

समूह की बैठकों से उन्हें नई जानकारी प्राप्त करने और खेती से जुड़े विकल्पों को समझने का अवसर मिला। वागधरा के मार्गदर्शन ने उन्हें अपनी जमीन और उपलब्ध संसाधनों के अनुसार नया प्रयोग करने का आत्मविश्वास दिया। इस तरह फूलों की खेती उनके लिए केवल एक नई फसल नहीं, बल्कि परिवार की आमदनी बढ़ाने का नया रास्ता बनी।

2–3 गुंठा से शुरुआत –

मीनाबेन ने जोखिम उठाने के बजाय छोटी शुरुआत की। उन्होंने पहले केवल 2 से 3 गुंठा जमीन में फूल लगाए। फूल इतने अच्छे हुए कि पास के फतेपुरा बाजार से माली खुद उनके खेत पर आकर फूल ले जाने लगा। बिना मंडी की भागदौड़ के अच्छी आमदनी होने से मीनाबेन का भरोसा बढ़ा।

शुरुआती सफलता ने उन्हें यह समझने में मदद की कि कम जमीन में भी सही चुनाव और मेहनत से बेहतर परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। बाजार में फूलों की मांग और खेत से सीधे बिक्री की सुविधा ने उनके इस प्रयास को आगे बढ़ाने का आधार दिया। धीरे–धीरे उनका अनुभव बढ़ा और फूलों की खेती के प्रति विश्वास मजबूत होता गया।

आधा बीघा तक विस्तार, मौसम के अनुसार खेती –

पहले साल के अनुभव से उत्साहित होकर मीनाबेन ने फूलों का रकबा बढ़ाकर करीब आधा बीघा कर लिया। अब वे समय और मौसम के अनुसार अलग–अलग फूलों की खेती करती हैं, ताकि पूरे साल फूलों की उपलब्धता बनी रहे।

मौसम के अनुसार खेती करने से उन्हें बाजार की जरूरतों को ध्यान में रखकर उत्पादन करने में मदद मिलती है। वे अपने अनुभव के आधार पर खेती से जुड़े कामों को आगे बढ़ा रही हैं। सीमित जमीन का बेहतर उपयोग उनकी इस सफलता का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

माला बनाकर सीधे ग्राहकों तक

मीनाबेन अब केवल फूल बेचने तक सीमित नहीं हैं। वे फूलों की माला बनाकर बेचती हैं, जिससे उन्हें कच्चे फूल की तुलना में बेहतर दाम मिलता है।

- रोजाना लगभग 60 मालाएँ तैयार की जाती हैं।
- हर माला रूपये 20 के भाव से बिकती है, यानी रोज लगभग रूपये 1,200 की बिक्री।
- मालाएँ फतेपुरा बाजार में नियमित ग्राहकों तक खुद पहुँचाई जाती हैं।

फूलों को माला के रूप में तैयार करके बेचने से उनके काम में मूल्यवर्धन हुआ है। अब वे केवल उत्पादन ही नहीं करतीं, बल्कि ग्राहकों की जरूरत के अनुसार उत्पाद तैयार करके सीधे बाजार तक पहुँचाती हैं। इससे उन्हें ग्राहकों के साथ नियमित संपर्क बनाए रखने में भी मदद मिलती है।

उनके काम की पहचान धीरे–धीरे आसपास के लोगों तक पहुँची है। नियमित ग्राहकों की मांग और पहले से मिलने वाले ऑर्डर उनके व्यवसाय को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

शादी के सीजन में गाड़ी सजावट से अतिरिक्त कमाई

शादियों के मौसम में मीनाबेन की मांग और बढ़ जाती है। दूल्हा पक्ष की गाड़ियों को फूलों से सजाने का काम भी उन्हें मिलने लगा है। एक गाड़ी की सजावट के बदले उन्हें रूपये 1,000 से रूपये 1,500 तक मिल जाते हैं।

इस तरह उन्होंने फूलों की खेती के साथ उससे जुड़े दूसरे कामों को भी अपनी आमदनी का हिस्सा बनाया है। शादी–विवाह जैसे अवसरों पर फूलों की बढ़ती मांग उनके लिए अतिरिक्त कमाई का अवसर लेकर आती है। खेती से प्राप्त फूलों का अलग–अलग रूप में उपयोग करना उनके काम को नई पहचान दे रहा है।

पति–पत्नी की मेहनत, सालाना रूपये 1 से 1.25 लाख की आमदनी –

पिछले करीब तीन वर्षों से मीनाबेन और उनके पति दोनों पूरी लगन से फूलों की खेती और उससे जुड़े काम में लगे हैं। इसके नतीजे में परिवार को हर साल लगभग रूपये 1 लाख से रूपये 1.25 लाख की आमदनी होने लगी है। आधा बीघा जमीन के हिसाब से यह किसी भी छोटे किसान परिवार के लिए बड़ी उपलब्धि है।

इस सफलता के पीछे पति–पत्नी की मेहनत, बाजार की मांग को समझने की कोशिश और नए अवसरों को अपनाने का साहस है। दोनों मिलकर खेती से लेकर फूलों की माला तैयार करने और ग्राहकों तक पहुँचाने का काम संभालते हैं। इससे परिवार की खेती केवल उत्पादन तक सीमित न रहकर एक छोटे व्यवसाय का रूप ले चुकी है। मीनाबेन की यह पहल बताती है कि खेती में विविधता अपनाकर सीमित जमीन से भी बेहतर आजीविका के अवसर बनाए जा सकते हैं। जब किसान परिवार अपनी उपज को सीधे ग्राहकों तक पहुँचाता है और उसकी उपयोगिता बढ़ाता है, तो उसे बाजार में अपनी अलग पहचान बनाने का अवसर मिलता है।

दूसरों के लिए प्रेरणा, परिवार के और सदस्य भी जुड़े

मीनाबेन की सफलता देखकर उनके परिवार के अन्य सदस्यों ने भी फूलों की खेती अपना ली है। आज फतेपुरा क्षेत्र में यह परिवार "फूलों वाले परिवार" के नाम से जाना जाने लगा है। लोग अब फूलों की जरूरत पड़ने पर पहले से ऑर्डर देने लगे हैं। यह उनके काम पर लोगों के बढ़ते भरोसे का प्रमाण है। एक छोटे से प्रयास से शुरू हुई यह यात्रा अब परिवार के अन्य सदस्यों के लिए भी प्रेरणा बन गई है। फूलों की खेती ने न केवल मीनाबेन के परिवार को आमदनी का नया साधन दिया है, बल्कि क्षेत्र में इस खेती की संभावनाओं को भी सामने रखा है। उनकी कहानी उन छोटे किसानों के लिए उम्मीद जगाती है, जिनके पास जमीन सीमित है और जो आमदनी बढ़ाने के नए विकल्प तलाश रहे हैं। स्थानीय मांग को समझकर, उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करके और मेहनत के साथ आगे बढ़कर खेती को आजीविका का मजबूत माध्यम बनाया जा सकता है। मीनाबेन मानती हैं कि वागधरा संस्था के मार्गदर्शन और प्रोत्साहन के बिना यह बदलाव संभव नहीं था। संस्था के सहयोग से उनकी आमदनी में उल्लेखनीय बढ़ोतरी हुई है। उनकी कहानी बताती है कि सही जानकारी, समूह का साथ और खुद की मेहनत मिल जाए, तो कम जमीन वाले किसान परिवार भी आत्मनिर्भर बन सकते हैं।

मीनाबेन का सफर इस बात का उदाहरण है कि ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका के नए अवसर स्थानीय जरूरतों और उपलब्ध संसाधनों से ही विकसित किए जा सकते हैं। सही समय पर मिला मार्गदर्शन, छोटे स्तर पर शुरुआत करने का साहस और निरंतर मेहनत किसी परिवार की आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने में अहम भूमिका निभाते हैं।

आज माधवा गाँव की मीनाबेन पारगी की पहचान केवल एक फूल उत्पादक के रूप में नहीं, बल्कि सीमित जमीन में नया रास्ता खोजने वाली मेहनती किसान के रूप में बन रही है। आधा बीघा जमीन पर शुरू हुई उनकी पहल ने परिवार को नई उम्मीद दी है और फतेपुरा क्षेत्र में "फूलों वाला परिवार" के नाम से एक अलग पहचान बनाई है।

वनोपजों के अनुमानित भाव – नीमच मंडी में विभिन्न वनोपज के भाव नीचे दिए गए हैं :

फसल	न्यूनतम भाव	अधिकतम भाव	औसतन भाव	फसल	न्यूनतम भाव	अधिकतम भाव	औसतन भाव	फसल	न्यूनतम भाव	अधिकतम भाव	औसतन भाव	फसल	न्यूनतम भाव	अधिकतम भाव	औसतन भाव
महुआ	3500	5200	4300	आँवला (सूखा)	4500	8500	6500	करंज बीज/पापड़ी	1450	4200	2800	खैर की लकड़ीछाल	3500	7500	5500
साल बीज	2000	3200	2600	बेल फल/बेलगिरी	1200	2600	1900	नीम बीज (निंबोली)	1500	2400	1960	प्याज	325	1311	750
साल पत्ता	1200	2200	1700	जामुन (गुठली/सूखा)	3500	6500	5000	अर्जुन की छाल	1500	3200	2350	अश्वगंधा	17500	36000	27500
कुसुम बीज	5000	7130	6100	इमली (बिना बीज)	2200	4800	3500	गिलोय (नीम गिलोय)	1000	3000	2000	तुलसी बीज	9500	14401	12911
बेलगोंद	9000	16000	12500	सीताफल (बीज)	2500	4200	3350	शतावरी (पीली/सफेद)	25000	29800	27400	चिया बीज	12000	23400	20300
बहेड़ा	1500	2800	2150	बेर (सूखा)	1800	3500	2650	सफेद मूसली	5000	7000	6000	किनोवा	2680	4850	2972

ध्यान दें : ये भाव अनुमानित हैं और मंडी में फसल की गुणवत्ता और मांग के अनुसार बदल सकते हैं। किसी भी लेन–देन से पहले मंडी में वर्तमान भाव की पुष्टि करना आवश्यक है।

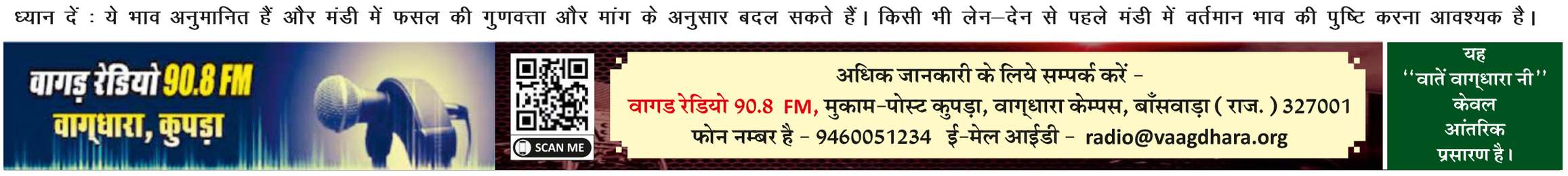

संकलन एवं सहयोग : **जागृती भट्ट**